3-5

यज्ञ-कर्म-पद्धतिः

डा० उमेश मिश्र

यज्ञ-कर्म-पद्धतिः

लेखक—
वेदाचार्य, पुराणेतिहासाचार्य
डा० उमेश मिश्र

प्रकाशक—
व्यास प्रकाशन
मानमन्दिर, वाराणसी

प्रकाशक—
व्यास प्रकाशन
डी० १६/१२ मानमन्दिर
वाराणसी।

मूल्य :
पच्चीस रुपये

प्रथम संस्करण
कार्तिक पूर्णिमा
१९८८

मुद्रक :
विष्णु प्रेस
कतुआपुरा, वाराणसी।

भूमिका

हिन्दू-जाति मात्र का प्राचीन धर्म ग्रन्थ वेद है। वेदों में कर्म काण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड इन तीनों का मुख्यत: वर्णन मिलता है। किन्तु इन तीनों में प्रधान स्थान 'कर्म काण्ड' को ही प्राप्त है।

वेदों का मुख्य विषय यज्ञादि है इसीलिये यज्ञों में वेद मन्त्रों का प्रयोग (उच्चारण) किया जाता है। वेद मन्त्रों के बिना यज्ञ नहीं हो सकते और यज्ञों के बिना वेद-मन्त्रों का ठीक-ठीक सदुपयोग नहीं हो सकता। अत: स्पष्ट है कि वेद हैं तो यज्ञ हैं, यज्ञ है तो वेद हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण (३।१०४) के 'वेदास्तु यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता:' इस वचन के अनुसार तथा भगवान मनु के, दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थम्' (१।२३) इस वाक्य से स्पष्ट है कि वेदों का प्रादुर्भाव यज्ञों के लिये ही हुआ है।

जिस प्रकार वेद अत्यन्त दुरूह हैं, उसी प्रकार वेदाङ्गभूत यज्ञ भी अत्यन्त कठिन हैं। जिस प्रकार वेद में उपास्य देवता हैं, उसी प्रकार यज्ञ में भी उपास्य देवता हैं। जिस प्रकार वेद अपौरुषेय, नित्य और अनादि है, उसी प्रकार यज्ञ अपौरुषेय, नित्य और अनादि हैं, ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र 'अग्निमीडे पुरोहितम्' में 'यज्ञ' पद आया है, अतः सिद्ध होता है कि वेद के समान 'यज्ञ' भी प्राचीन हैं। यज्ञ वैदिक संस्कृति का प्रधान अङ्ग है यज्ञ के द्वारा ही समस्त संसार का कल्याण होता आया है। यज्ञ में लोक-कल्याण-भावना विशेषरूप में निहित रहती है।

'यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते।' ऐ० ब्रा० (१।२।३)

ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि 'यज्ञ जनता के कल्याण के लिये किया जाता है। यज्ञ में लोक-कल्याण की भावना मुख्य है, अत: लोक-कल्याण की दृष्टि से सभी युगों में यज्ञ की नितान्त आवश्यकता है। संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो यज्ञ के द्वारा प्राप्त न हो सके। यज्ञ से धन धान्यादि, सन्तति, वस्तुओं की ही प्राप्ति नहीं होती अपितु पारलौकिक 'मोक्ष' आदि पदार्थों की भी प्राप्ति होती है।

'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' (श० प० ब्रा० १।७।१।५।) के अनुसार यज्ञ अत्यन्त ही श्रेष्ठ कर्म हैं। यज्ञ के विधि-विधान भी कठिन हैं। अतः यज्ञ कराने वाले आचार्य को तथा यज्ञ में सम्मिलित होने वाले प्रत्येक विद्वान् को यज्ञ सम्बन्धी विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है।

सयय के दुष्प्रभाव से वर्तमान समय में ब्राह्मण समाज में वेद तथा कर्म-काण्ड जानने वाले ब्राह्मणों की कमी होती जा रही है।

अतः चिरकाल से मेरी विशेष इच्छा थी कि यज्ञ कर्म विषय की एक सरल पुस्तक प्रकाशित हो जिसमें यज्ञ वम्बन्धी सम्पूर्ण विषयों का क्रम से संक्षिप्त संकलन हो, जिससे संक्षिप्त यज्ञ कर्मों का ज्ञान कर यज्ञिय ब्राह्मण विद्वान् सन्तोष का अनुभव करें। अतः सभी बातों का ध्यान रख कर ही मैंने यज्ञ सम्बन्धी सम्पूर्ण विषयों की जानकारी के लिये 'यज्ञ-कर्म-पद्धति' नामक सरल, सुबोध, संक्षिप्त पुस्तक को 'व्यास प्रकाशन' के माध्यम से आप विद्वज्जनों के सम्मुख उपस्थित किया है। आशा है यह 'यज्ञ-कर्म-पद्धति नामक पुस्तक याज्ञिकों और कर्मकाण्डियों के लिये विशेष उपयुक्त और लाभ-प्रद होगी।

मैंने इसमें परिशिष्ट भाग भी दिया है इस भाग में यज्ञ-मण्डप सम्बन्धी विभिन्न विषय दिये गये हैं। जलयात्रा विधि, अवभृत स्नान विधिः, वर्धिनी कलश स्थापन विधि तथा स्मार्त यज्ञों का संक्षिप्त परिचय आदि दुर्लभ विषयों का भी यथाशक्ति संग्रह किया गया है।

अन्त में मैं स्व० पण्डित प्रवर अनेकानेक ग्रन्थों के प्रणेता श्री अम्बिका दत्त जी व्यास महाभाग के पौत्र महोदय (अध्यक्ष—व्यास प्रकाशन, वाराणसी) को धन्यवाद देता हूँ कि इन्होंने इस महत्वपूर्ण 'यज्ञ कर्म पद्धति' को प्रकाशित कर याज्ञिक जगत का महान कल्याण किया है।

याज्ञिक सम्राट

स्व० पण्डित वेणीराम जी गौड़ वेदाचार्य के
पुत्र पण्डित डा० उमेश मिश्र गौड़ वेदाचार्य
वेदाध्यापक—शास्त्रार्थ महाविद्यालय, वाराणसी

विषय-सूची

यज्ञ —सामग्री

रोली १ पाव
मौली (कलावा) १ पाव
केसर ६ मासा
धूप बत्ती पैकेट ५
कपूर ४ तोला
अबीर (गुलाल) १५० ग्राम
बुक्का अभ्रक) १०० ग्राम
सिन्दूर ५० ग्राम
पिसी हल्दी २५० ,,
यज्ञो पवीत ५० नग
रूई २५० ग्राम
चावल ५ किलो
सुपारी १ किलो
पान ५० प्रति दिन
पेड़ा (नैवेद्य) १ कि० प्रतिदिन
ऋतुफल २ दर्जन प्रतिदिन
बतासा १। किलो
पंचमेवा २ किलो
मिश्री १ किलो
इलायची छोटी २ तोला
लवंग २ तोला
जावित्री १ तोला
जायफल १५
इत्र की शीशी २
गुलाब जल की शीशी १

दूध २ पाव प्रतिदिन
दही १ पाव ,,
चीनी १ पाव प्रतिदिन
घृत ५० ग्राम ,,
सहत १ पाव
गोबर
गोमूत्र
पीली सरसों
कच्चा सूत १ पाव
पुष्पमाला २ दर्जन प्रति०
फुटकर पुष्प प्रति०
तुलसी प्रति दिन
दूर्वा प्रति दिन
बिल्व पत्र प्रति दिन
गंगा जल प्रति दिन
नारियल जटादार ३०
गिरि के गोले ११
चन्दन मुट्ठा १
होरसा १
रुद्राक्ष की माला १
चारों प्रकार के रंग—
लाल रंग ५० पैसा
हरा रंग ५० पैसा
पीला रंग ५० पैसा
काला रंग ५० पैसा

पंच रत्न की पुड़िया ७

पञ्चपल्लव--

आम का पत्र

गूलर का पत्र

पाकर का पत्र

बट का पत्र

पीपल का पत्र

सर्वौषधि--

मुरा ५० पैसा

जटामांसी ५० पैसा

वच ५० पैसा

कूट ५० पैसा

५) रु० शिलाजीत

आँबाहलदी दारुहल्दी १ रुपये

सठी ५० पैसा

चंपा ५० पसा

नागर मोथा ५० पैसा

सप्तमृत्तिका--

घोड़े के स्थान की मिट्टी

हाथी ,, ,, ,, ,,

दीमक की मिट्टी

नदी की ,,

तालाब की ,

राजद्वार की ,,

गोशाला की ,,

सप्ताधान्य -

यव १। किलो

चावल १। किलो, चना १। किलो

गेहूँ १। किलो

धान १। किलो

ककुनी १। किलो

साँवा २ पाव

नवग्रह की लकड़ी —

मदार १०८

पलास १०८

खैर १०८

अपामर्ग १०८

पीपल १०८

गूलर १०८

शमी १०८

दूर्वा १०८

कुशा १०८

कंबल नया १ (अरणि मंथन हेतु)

चटाई १ (अरणि मंथन के लिये)

डोरी सूत की मोटी १२ हाथ की

रुई २५० ग्राम

कटिया लोहे की ४

तांबे का तार २५ हाथ

काठकी चौकी ३

पीढ़ा काठ का ४

काला उड़द १। किलो

यज्ञ पात्र—

प्रणीता १

प्रोक्षणी १

स्रुवा १

स्फ्य १
वसोर्धारा १
अरणी-मन्था
शंख १
घण्टा १ पीतल
घड़ौल १ पीतल
आरतीदानी १ पीतल
पुण्याहवाचन कलश १
प्रधानकलश १ ताम्र, चाँदी
अथवा पीतल
वास्तु कलश १ ताम्र, पीतल
क्षेत्रपाल कलश १ ताम्र, पीतल
योगिनी कलश ३ ,, ,,
नवग्रह कलश १
रुद्र कलश १
प्रवेश कलश ३
कलश १८ ताम्र छोटे
१ पूर्णपात्र (ब्रह्मा के लिये) बड़े
१ प्रधान कुण्ड कलश बड़ा
थाली स्टील ४
परात बड़ी स्टील १ (अथवा पीतल)
आज्यस्थाली
(कटोरा बड़ा १) हवन के लिये
चरुस्थाली (खीर)
वधोना १
अभिषेक पात्र १
कांसे की थाली १

कड़छल १
सड़सी १
चिमटा १
छायापात्र २
कटोरी पूजनार्थ १६
बालटी १
गंगासागर १
देवताओं को चढ़ाने के वस्त्र—
पीताम्बर रेशमी (भगवानके लिये) १
जनानी साड़ी १
(भगवती के लिये)
कब्जा १
रेशमी चुनड़ी १
सौभाग्य पिटीरी २
शृंगारदान १
धोती १६ अथवा १८
दुपट्टा १६ ,, १८
अंगोछा १५ ,, ,,
ध्वजा पताका तथा वेदियों के
लिये वस्त्र—
सफेद कपड़ा १५ मीटर
लाल कपड़ा १५ मीटर
हरा ,, १५ मीटर
काला ,, ,, ,,
पीला ,, ,, ,,
चंदवा पचरंगा बड़ा १
चंदवे छोटे ६
देवताओं की फोटो १६

शीशा २=२।। का १
प्रधान देवता की मूर्त्ति
सुवर्ण १, २ तोले की
वास्तु प्रतिमा १ सुवर्ण
क्षेत्रपाल प्रतिमा १ सुवर्ण
योगिनी प्रतिमा ३ „
नवग्रह प्रतिमा ९
रुद्र प्रतिमा १
शलाका सुवर्ण १
जिह्वा १ सुवर्ण
चाँदी का चौकोर पत्र
(१६ अंगुल लंबा, चौड़ा) १
ब्राह्मण वरण सामग्री ब्राह्मण संख्यानुसार-
धोती
दुपट्टा
गम्छा
लोटा
गिलास
चम्मच
गोमुखी
माला
खड़ाऊँ
यज्ञोपवीत
आसन (कुशा)
आचार्य वरण सामग्री-
पीतांबर २
शिल्क १
अंगोछा १

लोटा १
रुद्राक्ष माला १
आसन ऊनी १
गोमुखी १
खड़ाऊँ
यज्ञोपवीत १
शय्यादान सामग्री—
पलंग नेवार १
दरी १
गद्दा १
चदरा २
मसहरी १
रजाई १
कंबल १
धोती १
तकिया १
भोजनपात्र ११
अन्न सभी प्रकार के
घृत १ टीन
गीता की पुस्तक
हवन सामग्री—
तिल, चावल
यव, चीनी
घृत, कवलगट्टा
चन्दन चूरा, गुग्गुल
पचमेवा, भोजपत्र
आम की लकड़ी
लोहबान

।। श्री गणेशाय नमः ।।

यज्ञ-कर्म-पद्धतिः

पूर्वाह्णे प्राङ्मुख उपविश्य स्वदक्षिणतः पत्नी-मुपवेश्य ॐ पवित्रे स्थो व्वैष्णव्यौ सवितुर्व्वः प्रसव ऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामःपुने तच्छके-यम् ।। इतिमन्त्रेण पवित्रधारणम् । तत आचम्य ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्ष स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।। ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु" इति कुशत्रयानीतजलै-रात्मानं स्वदक्षिणस्थापितान् पूजासम्भारांश्च संप्रोक्ष्य अक्षतपुञ्जे रक्षांदीपं निधाय शान्तिपाठं पठेत् ।

किसी शुभ मुहूर्त्त में नित्य क्रिया करके, "पुरुषसूक्त" से मङ्गल स्नान करके, रक्तवल्लिका से विभूषित आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर, अपने दाहिने पत्नी को बैठाकर, पवित्री धारण करके, आचमन प्राणायाम करे ।

अनन्तर ब्राह्मण यजमान का ग्रन्थि बन्धन करके रक्षा-दीपक को प्रज्वलित करके, पूजन सामग्री का प्रोक्षण करके शान्ति पाठ प्रारम्भ करे ।

❀ अथ पुरुषसूक्तम् ❀

हरि÷ॐसहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्व्वतस्पृत्वात्त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१॥
पुरुष ऽएवेदꣳ सर्व्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥३॥
त्रिपादूर्ध्व ऽउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्क्रामत्साशनानशने ऽअभि ॥४॥
ततो विराडजायत विराजो ऽअधि पूरुषः ।
स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥
तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्ज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्क्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥६॥
तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुत ऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥
तस्मादश्वाऽ अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽ अजावय÷ ॥८॥

तं यज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः ।
तेन देवाऽ अयजन्त साध्या ऽऋषयश्च ये ॥९॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमुरू पादाऽउच्येते॥१०॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य÷कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य÷पद्भ्यं शूद्रोऽअजायत॥११॥
चन्द्रमा मनसा जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥
नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यामूमि दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२।अकल्पयन्॥१३॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइद्ध्मः शरद्धविः॥१४॥
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिध÷कृताः ।
देवा यद्यज्ञन्तन्वाना ऽअबध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥१५॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि
धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमान÷सचन्त यत्र
पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

॥ पुरुष सूक्तं समाप्तम् ॥

❀ अथ शान्ति पाठः ❀

ओ३म् आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोदब्धासोऽअपरीतासऽउद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतान्देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयन्देवा न ऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥ तान्पूर्व्वया निविदा हूमहे वयं भगम्मित्रमदितिन्दक्षमस्त्रिधम् । अर्य्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥ तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥४॥ तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥ स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं-

ग्यावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवाऽअवसागमन्निह ॥ ७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥८॥ शतमिन्नु शरदो ऽअन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसन्तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मद्ध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा ऽअदितिः पञ्चजना ऽअदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम् ॥ १० ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्व्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ११ ॥ यतो यतः समीहसे ततो नो ऽअभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ १२ ॥ सुशान्तिर्भवतु।

॥ इति शान्ति पाठः ॥

❀ अथ मङ्गल पाठः ❀

ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः ॥१॥ ॐ उमामहेश्वराभ्यां नमः ॥२॥ ॐ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः॥३॥ ॐ शचीपुरन्दराभ्यां नमः ॥४॥ ॐ मातृपितृचरणकमलेभ्यो नमः ॥५॥ ॐ इष्टदेवताभ्यो नमः ॥६॥ ॐ कुलदेवताभ्यो नमः ॥७॥ ॐ ग्रामदेवताभ्यो नमः॥८॥ ॐ स्थानदेवताभ्यो नमः ॥९॥ ॐ वास्तुदेवताभ्यो नमः ॥१०॥

ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॥११॥ ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ॥१२॥ ॐ गुरुभ्यो नमः ॥१३॥ ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ॥१४॥ इति प्रणम्य ।

ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥१॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥२॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
सङ्ग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥३॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥४॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥५॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥६॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः ॥७॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि॥८
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥९॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्द्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥१०॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥११॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते ।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥१२॥

सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥१३॥
विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥१४॥
वक्रतुण्ड महाकाय कोटि सूर्य समप्रभ ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥१५॥

॥ इति श्लोकान् पठेत् ॥

॥ इति मङ्गलपाठः ॥

ततो यजमानः स्वदक्षिणहस्ते अर्घपात्रे कुशात्रय, जल, अक्षत, पुष्प, फल, द्रव्याण्यादाय संकल्पं कुर्यात् ।

अनन्तर दाहिने हाथ में अर्घपात्र लेकर उसमें कुशा (दूर्वा) जल, चावल, पुष्प, फल एवं द्रव्य लेकर संकल्प करें ।

यथा—

❀ अथ संकल्पः ❀

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्राह्मणोऽन्हि-

द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारते वर्षे कुमारिकाखण्डे आर्यावर्त्तैकदेशे विक्रमशके बौद्धावतारे अमुकनाम्नि संवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ ॐ तत्सदद्य महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषुयथायथाराशिस्थानस्थितेषुसत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहं (वर्माऽहम्, गुप्तोऽहम्) मम आत्मनः श्रुतिस्मृति पुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं अस्माकं सर्वेषां सकुटुम्बनां आयु, आरोग्य, ऐश्वर्याभिवृद्ध्यर्थम्, त्रिविधतापोपशमनार्थं, लाभार्थं, क्षेमार्थं, विजयार्थं,मनः कामनासिद्ध्यर्थम्. अलक्ष्मी परिहार पूर्वक दशविधलक्ष्मीप्राप्त्यर्थम्, अस्माकं सर्वेषां समस्त दुरितोपशान्त्यर्थम् , कायिकवाचिकमानसिक, सांसर्गिकादिपापानां क्षयार्थम्, विश्वस्मिन् जगति

सर्वविधशान्त्यर्थंधर्मसंस्थापनार्थं च अस्मिन् पुण्य-काले सग्रहमखं अमुकयागे चतुर्णां वेदानां पारायणम्, श्रीमद्भागवत-विष्णुपुराण-दुर्गादीनां पारायणं अद्यारम्य अमुकदिनपर्यन्तं करिष्ये।[1]

पुनर्जलमादाय तदङ्गत्वेन पूर्वं निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं, कलशस्थापन, स्वस्तिपुण्याहवाचन, षोडशमातृकापूजनं, वसोर्द्धारापूजनं, आयुष्यमन्त्र-जपं, सांकल्पिकेनविधिना नान्दीश्राद्धम् आचार्यादि ऋत्विग्वरणं, मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्यपश्चिमद्वारे भूम्यादिपूजनं च मण्डपप्रवेशान्तं कर्म करिष्ये। तत्रादौ दिग्रक्षणं, प्रोक्षणं, सूत्रवेष्टनं च करिष्ये।

१—यजमान के लिये संकल्प करते समय "करिष्यामि" और स्वयं के लिये संकल्प करते समय 'करिष्ये' ऐसा कहना चाहिये। ब्राह्मण के द्वारा पाठ कराना हो तो 'कारयिष्ये' कहना चाहिये। संकल्प विकल्पादि विविध-यज्ञ सम्बन्धी विषयों के लिये स्व० पं० वेणीराम गौडकृत यज्ञमीमांसा देखें।

❀ अथ गणपति पूजनम् ❀

एक ताम्र के पात्र में लाल चावल से अष्टदल कमल बनाकर उसमें गोमय (गोबर) अथवा सुवर्ण निर्मित गणेशाम्बिका की प्रतिमा रखकर गणेश और अम्बिका का आवाहन करें। तद्यथा--

हे हेरम्ब त्वमेह्येहि अम्बिकात्र्यम्बकात्मज।
सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभकयोः पितः ॥१॥
नागास्यं नागहारं त्वां गणराजं चतुर्भुजम्।
भूषितं स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः ॥२॥
आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः।
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां यागं च रक्ष मे ॥३॥

ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनांत्वा निधिपतिꣳ हवामहे व्वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्त्वमजासि गर्भधम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि स्थापयामि इति गणपतिमावाह्य तदुत्तरतोऽम्बिकां स्थापयेत्।

हेमाद्रितनयां देवीं वरदां भैरवप्रियाम्।
लम्बोदरस्य जननीं गौरीमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ अम्बे ऽअम्बिकेऽम्बालिके नमानयति कश्चन ।
स सस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः गौरीमावाहयामि स्थापयामि । ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु । विश्वेदेवास ऽइहमादयन्तामों ३ प्रतिष्ठ ॥

गणेशाम्बिके सुप्रतिष्ठिते वरदे भवताम् ।
इत्यक्षतैस्तन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य प्रत्येकं सह वा पूजयेत् ॥
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः आसनार्थे अक्षतान् समर्पयामि ।

पादयोः पाद्यं समर्पयामि । हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि । अर्घाङ्गमाचमनीयं जलं समर्पयामि । स्नानीयं जलं समर्पयामि । पुनराचमनीयं जलं समर्पयामि ।

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥
पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं पयो दधि घृतं मधु ।
शर्करा च समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः मिलित पञ्चामृतस्नानं समर्प० ।

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तानऽऊर्ज्जे दधातन ॥
महे रणाय चक्षसे ।
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥
तस्माऽअरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा चनः ॥

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः शुद्धोदकस्नानं जलं समर्पयामि । स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

ॐ युवासुवासाःपरिवीतआगात्सउश्रेयान्भवतिजायमानः।
तं धीरासः कवयऽउन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ।
शीतवातोष्णसन्त्राणं लज्जाया रक्षणं परम् ॥
देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्ति प्रयच्छ मे ।
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः वस्त्रं समर्पयामि ॥

वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ॥
आयुष्यमग्रयंप्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतंबलमस्तु तेजः ।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।
यज्ञोपवीतान्ते आचमनीय जलं समर्पयामि ॥
ॐ त्वां गन्धर्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत ॥
श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥
कनिष्ठामूलगताअंगुष्ठयोगेनगन्धमुद्रांप्रदर्श्यअनामिकया
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः गन्धं समर्पयामि ।
ॐ अक्षन्नमीमदन्तह्यव प्रियाऽअधूषत ॥
अस्तोषतस्वभानवोविप्रानविष्ठयामतीयोजान्विन्द्रतेहरी।
अक्षताश्चसुरश्रेष्ठाः कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः॥
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ।
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः अक्षतान् समर्पयामि ॥
ॐओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वाऽइव सजित्वरीर्व्वीरुधः पारयिष्णवः ॥

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मायाऽऽहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः पुष्पमालां समर्पयामि ।
ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥
दूर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान्मङ्गलप्रदान् ।
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण गणनायक ॥
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि ।
ॐअहिरिव भोगैःपर्य्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः
हस्तघ्नो व्विश्वा व्वयुनानि व्विद्वान्पुमान्पुमाꣳसं
परिपातु व्विश्वतः ॥

नानापरिमलैर्द्रव्यैर्निर्मितं चूर्णमुत्तमम् ।
अबीरनामकं चूर्णं गन्धं चारु प्रगृह्यताम् ॥

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि । ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो व्वात प्रमियः पतयन्ति यह्वाः । घृतस्य धारा ऽअरुषो न व्वाजीकाष्ठा भिन्दन्नूर्म्मिभिः पिन्वमानः ॥

सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं सुखवर्धनम् ।
शुभदं कामदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः सिन्दूरं समर्पयामि ।

नैवेद्यं पुरतो निधाय—ॐ धूरसि धूर्व्व धूर्व्वन्तं धूर्व्व तं योऽस्मान्धूर्व्वति तं धूर्व्व यं व्वयं धूर्व्वामः । देवानामसि व्वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः धूपमाघ्रापयामि ।

ॐ अग्निर्ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्य्यो ज्योतिर्ज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा । अग्निर्व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा । ज्ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा ॥

साज्यं च वर्त्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥
भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने ।
त्राहि मां निरयाद्घोराद्दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते ॥
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः दीपं दर्शयामि । हस्तौ प्रक्षाल्य

ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्र दातारन्तारिषऽउर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम् ॥
शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च ।
आहारो भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

अनामिका मूलयोः अङ्गुष्ठ योगेन नैवेद्य मुद्रां प्रदर्श्य ग्रासमुद्राः प्रदर्शयेत् । तद्यथा—अङ्गुष्ठ प्रदेशिनी मध्यमाभिः—

तुलसीं प्रक्षिप्य ॐ प्राणाय स्वाहा । १॥ अङ्गुष्ठमध्यमा अनामिकाभिः-ॐअपानाय स्वाहा ॥२॥ अङ्गुष्ठ अनामिकाकनिष्ठकाभिः-ॐ व्यानाय स्वाहा ॥३॥ कनिष्ठिकातर्जन्यङ्गुष्ठैः—ॐ समानाय स्वाहा ॥४॥ साङ्गुष्ठाभिः सर्वाङ्गुलिभिः—ॐउदानाय स्वाहा ॥५॥ इति प्रदर्श्य ॥

नैवेद्यान्ते गणेशाम्बि काभ्यां नमः नैवेद्यं निवेदयामि । आचमनीयं जलं

समर्पयामि । मध्येपानीयं समर्पयामि । उत्तरापोशनं समर्पयामि ।

ॐ त्वाङ्गधर्व्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः । त्वामोषधे सोमो राजा व्विद्वान्न्यक्ष्मादमुच्यत ॥

चन्दनं मलयोद्भूतं कस्तूर्यादिसमन्वितम् ।
करोद्वर्त्तनकं देव गृहाण परमेश्वर ॥

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः करोद्वर्त्तनार्थे चन्दनानुलेपनं समर्पयामि ।

ॐ याः फलिनीर्या ऽअफला ऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वᳪ हसः ॥

पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः मुखशुद्ध्यर्थं ताम्बूलपत्रं पूगीफलं च समर्पयामि ।

ॐ याः फलिनीर्याऽअफला ऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वᳪ हसः ॥

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः ऋतुफलानि समर्पयामि ।
ॐहिरण्यगर्भसमवर्त्तताग्रे भूतस्यजातःपतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम बीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः कृतायाः पूजायाः
साद्गुण्यार्थे दक्षिणां समर्पयामि। ॐआ रात्रि पार्थिवꣳ
रजः पितुरप्रायिधामभिः । दिवः सदाꣳसिबृहती
बितिष्ठसऽआत्वेषंबर्तते तमः ॥

ॐ इदꣳ हविः प्रजननं मेऽअस्तुदशवीरꣳ
सर्वगणꣳ स्वस्तये । आत्मसनिप्रजासनि पशुसनि
लोक सन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करो-
त्वन्नं पयोरेतोऽअस्मासुधत्त ॥ गणेशाम्बिकाभ्यां
नमः कर्पूरनीराजनं समर्पयामि ।

ॐयज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्म्माणिप्रथमान्न्यासन्
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्रपूर्व्वेसाद्ध्याःसन्तिदेवाः।
ॐराजाधिराजायप्रसह्यसाहिनेनमोवयंवैश्रवणाय कुर्महे।
स मे कामान्कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु।

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥

(तैत्तिरीयारण्यक १ प्र० ३१ अ०)

ॐ स्वस्ति[1] साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्, सार्वभौमस्सार्वायुष आन्तादापरार्धात्, पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया ऽएकराडिति ॥

(ऐ० ब्रा० ८ पं० ४० अ० १ खं०) ॥

तदप्येषं[2] श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याऽवसन् गृहे आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वे देवाः सभासद इति ॥

(ऐ० ब्रा० ८ पं० ४ अ० ७ खं०)

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो-बाहुरुत विश्वतस्पात् । सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव ऽएकः ॥

नाना सुगन्धि पुष्पाणि यथा कालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ॥

---

(१) 'स्वस्ति' इति पाठो मूले नोपलभ्यते ।

(२) क्वचित् सविसर्गपाठोऽपि दृश्यते ।

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि । नमस्करोमि ।

ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि । ततो विशेषार्घं[1] दद्यात् ॥

ताम्ररजतादिपात्रे जलगन्धाक्षतफलपुष्पदूर्वा-कुशाग्रदधिदुग्धसर्षपान् (द्रव्यं च) प्रक्षिप्य अर्घपात्रं उभाभ्यां कराभ्यां गृहीत्वा श्लोकान्पठेत् । तद्यथा—

ॐ रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक ।
भक्तानामभयं कर्त्ता त्राता भव भवार्णवात् ॥
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो ।
वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद ॥
अनेन सफलार्घेण फलदोऽस्तु सदा मम ।
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः विशेषार्घं समर्पयामि ॥
इति अर्घं दत्वा गणेशं प्रार्थयेत् ।

१. विशेषार्घमिति । "प्रारब्धकर्मसिद्ध्यर्थं देवाय कल्पयामि तत् । नारिकेलेन देयोऽर्घः फलकाङ्क्षिभिः" ॥ इति परशुरामः ।

गणेश प्रार्थना—

ॐ विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय,
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय,
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥१॥
भक्तार्त्तिनाशनपराय गणेश्वराय,
सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय ।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय,
भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ॥ २ ॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः ।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः॥३॥
विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥४॥
लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥५॥
त्वां विघ्नशत्रुदलनेति च सुन्दरेति,
भक्तप्रियेति सुखदेति फलप्रदेति ।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति,

तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव ॥६॥

इति गणेशाम्बिकयोः पूजनं कृत्वा पूर्ववत् अर्घपात्रे गन्धादि द्रव्यं कृत्वा ॐ रूपं देहि जयं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे। पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे॥

ॐ अम्बिकायै नमः' इति विशेषार्घं समर्पयामि।

गणेशपूजने कर्म यन्न्यूनमधिकं कृतम्।
तेन सर्वेण सर्वात्मा प्रसन्नोऽस्तु सदा मम॥७॥

"अनया पूजया गणेशाम्बिके प्रीयेतां न मम" इति जलं प्रक्षिपेदिति सम्प्रदायः। आचरितगणेशाम्बिकापूजनविधौ यन्न्यूनातिरिक्तं तत्परिपूर्णमस्तु।

इति गणेशाम्बिकापूजनम्।

अथ कलशस्थापन प्रयोगः

भूमौ कुङ्कुमादिना अष्टदलं पदत्रं कृत्वा

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न ऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥ इति मन्त्रेण कलशाधारभूमिं स्पृष्ट्वा।

"ॐ ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा।

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ॰ राजन्पारयामसि ॥

इति स्पृष्टप्रदेशे उपकल्पितप्रस्थधान्यस्य पुञ्जं कृत्वाऽष्टदलं विलिख्य ।

ॐ आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा व्विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्ज्जा नि वर्त्तस्व सा नः सहस्त्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्म्मा ऽऽविशताद्रयिः ॥

इति धान्यपुञ्जस्योपरि अच्छिद्रं नूतनं हेमं[1] राजतं ताम्रमभावे मृण्मयं वा सूत्रवेष्टितकण्ठं कृतस्वस्तिकं कलशं संस्थाप्य ।

ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनी स्थो व्वरुणस्य ऽऋतसदन्यसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमासीद ॥

इत्युपकल्पितकलशोदकेन तं पूरयित्वा "त्वाङ्गन्धर्वा॰" इति मन्त्रेण गन्धं प्रक्षिप्य,

१. हैममिति । हेमाद्रौ—

"हैमराजतताम्रा वा मृण्मया लक्षणान्विताः ।
पञ्चाशाङ्गुलवैपुल्या उत्सेधे षोडशाङ्गुलाः ।
द्वादशाङ्गुलमूलास्ते अष्टाङ्गुलमुखास्तथा ॥"
उपकल्पितकलशोदकेनेति ।
तीर्थोदकेन चापूर्य कलशं तु विचक्षणः' इति ।

२. श्लो॰—श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सगन्धाय कलशे सङ्क्षिपाम्यहम् ॥

ॐ या ऽओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥
इति मन्त्रेण सर्वौषधीः[1] कलशे प्रक्षिप्य,
"काण्डात्काण्डादिति"[2] दूर्वाः प्रक्षिप्य.

ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज ऽइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥
इति मन्त्रेण पञ्च[3] पल्लवान् कलशे प्रक्षिप्य,

---

१. सर्वौषधीरिति । हेमाद्रौ—

"कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलयचन्दने ।
सटीचम्पकमुस्ताश्च सर्वौशधिगणः स्मृताः ।"
सटी कचोरः । चम्पक. प्रसिद्धस्तस्य त्वक् ।
वचाचम्पकमुस्ताश्चेत्यपि पाठः ॥

२. श्लो०—दूर्वे ह्यमृतसम्पन्ने शतमूले शताङ्कुरे ।
शतं मे हर पापानि शतमायुर्विवर्धिनी ॥

३. पञ्च पल्लवानिति । हेमाद्रौ —

"पञ्चभङ्गसमायुक्तं फलवस्त्रयुगान्वितम् ।
पञ्चरत्नसमायुक्तं पूर्णपात्रयुतं तथा ।
अश्वत्थोदुम्बरौ जम्बू चूतन्यग्रोधपल्लवा ।
पञ्चभङ्गा इति प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभना' इति ।

पञ्चभङ्गाः पञ्चपल्लवाः । भविष्यपुराणे तु जम्बूस्थाने लक्ष उक्तः । केचित्तु "न्यग्रोधपिप्पललक्षजम्बूचूततरूद्भवाः । पञ्च विज्ञेयात्त्वक् चैतेषामपीष्यते" इति ब्रह्माडपुराणात्पल्लवप्रक्षेपानन्तरं "अश्वत्थे च" इति मन्त्रेणैच पञ्च त्वक्प्रक्षेपणमप्याहुः ।

ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः ॥

इति मन्त्रेण कलशे सप्तमृदः प्रक्षिप्य,
ॐ या फलिनीर्य्या ऽअफला ऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूता स्तानो मुञ्चन्त्वᳩ हसः ॥
इति मन्त्रेण पूगीफलं कलशे प्रक्षिप्य, ॐ परि वाजपतिः
कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानिदाशुषे ॥

इति मन्त्रेण पञ्च रत्नानि कलशे प्रक्षिप्य (अभावे
हेम वा । हेमादिप्रक्षेपेऽप्ययमेव मन्त्रः)

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य
जातः पतिरेकऽ आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

इति मन्त्रेण हिरण्यं कलशे प्रक्षिप्य

१. सप्तमृद इति । 'अश्वस्थानाग्दजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात् ।
राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च मृद आनीय निक्षिपे" दिति । अत्र पञ्चमृत्प्र-
क्षेपणं केचिदाहुस्तन्मते ह्रदान्तमृत्प्रक्षेपणं कार्यमिति ।

२. पञ्चरत्नानीति । कालिकापुराणे—
"कनकं कुलिशं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् ।
एतानि पञ्चरत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदुः ॥"

ॐ सुजाज्ज्योतिषा सह शर्म्मं व्वरूथमाऽसदत्स्वः ।
व्वासो ऽअग्ने व्विश्वरूपꣳ संव्ययस्व व्विभावसो ॥

इति मन्त्रेण वस्त्रयुग्मेन (रक्तसूत्रेण च तं) कलशं वेष्टयित्वा ।

ॐ पूर्ण्णा दर्व्विं परापत सुपूर्ण्णा पुनरापत ।
व्वस्नेव व्वि क्रीणावहा ऽइषमूर्ज्जꣳ शतक्रतो ॥

इति मन्त्रेण सतण्डुलपात्रेण कलशानन-मपिदध्यात् ।

तत्र—ॐ याः फलिनीर्या

ऽअफला ऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳ हसः ॥

इति मन्त्रेण नारिकेलं (पूगीफलं वा) स्वाभिमुखं संस्थापयेदिति सम्प्रदायः अत्र वरुणावाहनपूजनेऽपि केचिदाहुः ।

ॐ तत्वा यामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्त-
दाशास्ते यजमानो हविर्ब्भिः ।
अहेडमानो व्वरुणेह बोध्युरुशꣳ
स मा नऽआयुः प्र मोषीः ॥

इत्यनेन मन्त्रेण अस्मिन्कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमावाहयामि स्थापयामि।

"ॐ अपां पतये वरुणाय नमः" इति वरुणं सम्पूज्य कलशे देवता आवाहयेत्।

"सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः॥"

इति कलशे देवता आवाह्य कलशमभिमन्त्रयेद्देवता आवाहयेच्च।

"कलाःकला हि देवानां दानवानां कलाः कलाः।
निगृह्य निर्मितो यस्मात् कलशस्तेन कथ्यते॥"
ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः।
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः।
अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः॥" इति।

ततः कुम्भ (कलश) प्रार्थना—

ॐ देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ ! विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥१॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे प्रतिष्ठिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥२॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥३॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ।
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ।
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥४॥
नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय सुश्वेतहाराय सुमङ्गलाय ।
सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते।५।
पाशपाणे नमस्तुभ्यं पद्मिनीजीवनायक ।
पुण्याहवाचनं यावत्तावत्त्वं सन्निधौ भव ॥६॥

इति कलशस्थापनम् ।

अथ आश्वलायन गृह्यपरिशिष्टोक्तः स्वस्ति पुण्याहवचन प्रयोगः ॥

ततो यजमानः—अवनिकृतजानुमण्डलः[1] कम-

---

१. जान्वोर्मण्डलं जानुमण्डलम् अवनिकृतं जानुमण्डलं येन स अवनिकृतोभयजानुरित्यर्थः ।

लमुकुलसदृशमञ्जलिं शिर स्याधाय (आचार्यः स्व) दक्षिणेन पाणिना सुवर्णपूर्णं कलशं (यजमानाञ्जलौ) धारयित्वा आशिषः प्रार्थयेत्—

दीर्घा नागा नद्यो गिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च ।
तेनायुः प्रमाणेन (पुण्यं) पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु ।
ॐ त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा ऽअदाभ्यः।
अतो धर्म्माणि धारयन् ॥

'तेनायुः प्रमाणेन (पुण्यं) पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु' (इति मन्त्रेण कलशं, स्वशिरसा, पत्नीशिरसा, विवाहादौ संस्कार्यशिरसा, च संयोज्य कलशस्थाने कलशं स्थापयित्वा पुनर्गृहीत्वा मन्त्रेण तथैव इति त्रिवारं कुर्य्यात्) ।

❀ विप्र हस्तपूजनम् ❀

ततः कर्त्तोदङ्मुखानां ब्राह्मणानां हस्तेषु

"अपां मध्ये स्थिता देवाः सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम् ।
ब्राह्मणानां करे न्यस्ताः शिवा आपो भवन्तु (मे) ते" इत्युक्त्वा 'ॐ शिवा आपः सन्तु' इति विप्र-हस्तेषु जलं दद्यात् ।

'सन्तु शिवा आपः' इति ब्राह्मणाः प्रतिवचनं ब्रूयुः ।
"लक्ष्मीर्वसतु पुष्पेषु लक्ष्मीर्वसति पुष्करे ।
सा मे वसतु वै नित्यं सौमनस्यं तथाऽस्तु नः॥"
ॐ सौमनस्यमस्तु' इति विप्रहस्तेषु पुष्पं दद्यात् ।
'अस्तु सौमनस्यम्' इति ब्राह्मणाः ।

ॐ "अक्षतं चास्तु मे पुण्यं दीर्घमायुर्यशो बलम् ।
यद्यच्छ्रेयस्करं लोके तत्तदस्तु सदा मम॥" "ॐ अक्षतं चारिष्टं चास्तु" इति विप्र हस्तेष्वक्षतान् दद्यात् । अस्त्वक्षतमरिष्टं[1] च' इति ब्राह्मणाः ।
'ॐगन्धाः पान्तु' इति विप्रहस्तेषु गन्धं दद्यात् ।
'सौमङ्गल्यं चास्तु' इति विप्राः ।

(पुनः) 'ॐ अक्षताः पान्तु' इति विप्रहस्तेषु अक्षतान् दद्यात् । 'आयुष्यमस्तु' इति ब्राह्मणाः ।
(पुनः) 'ॐ पुष्पाणि पान्तु' इति विप्रहस्तेषु पुष्पाणि दद्यात् । 'सौश्रियमस्तु' इति ब्राह्मणाः ।

'ॐ (सफल) ताम्बूलानि पान्तु' इति विप्रहस्तेषु फलं ताम्बूलं च दद्यात् 'ऐश्वर्यमस्तु' इति ब्राह्मणाः।

---

१. अरिष्टं सूतिकागृह मित्यमरोक्तं वा ।

'ॐदक्षिणाः पान्तु' इति विप्रहस्तेषु दक्षिणां दद्यात्। 'बहुदेयं चास्तु' इति ब्राह्मणाः।

'ॐस्वर्चितमस्तु' इति विप्रहस्तेषु जलं दद्यात्। 'अस्त्वर्चितम्' इति ब्रह्मणाः।

'ॐ दीर्घमायुः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रं बहुधनं चायुष्यं चास्तु' इति वाक्येन विप्रान् प्रार्थयेदिति सम्प्रदायः। ततः कर्त्ता—

'ॐ यं कृत्वा सर्ववेदयज्ञक्रियाकरणकर्मारम्भाः शुभाः शोभनाः प्रवर्त्तन्ते तमहमोङ्कारमादिं कृत्वा ऋग्यजुः सामा [थर्वा] शीर्वचनं बहृषिमतं समनुज्ञातं भवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये' इति वदेत्। 'वाच्यताम्' इति विप्राः।

ततः कर्त्ता--ॐद्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत। नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ १ ॥

सवितः त्वा सवानाꣳसुवतामग्निर्गृहपतीनाꣳ सोमो व्वनस्पती नाम्।

वृहस्पतिर्व्वाच ऽइन्द्रो ज्येठ्याय रुद्रः पशुभ्यो

मित्रः सत्यो व्वरुणो धर्म्मपतीनाम् ॥२॥

न तद्रक्षाꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳह्येतत् ।
यो बिभर्त्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥३॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिविसद्भूम्या ददे ।
उग्रꣳ शर्म्म महि श्रवः ॥४॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ २॥ऽइयक्षते ॥५॥ [इति मन्त्रानुक्त्वा] यजमानः—

'व्रत-जप-नियम-तपः-स्वाध्याय-क्रतु-शम-दम-दया-दान-विशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनःसमाधीयताम्' । इति विप्रान् प्रार्थयेत् । 'समाहितमनसः स्मः' इति विप्राः ।

कर्ता—'प्रसीदन्तु भवन्तः' इति वदेत् । प्रसन्नाः स्मः' इति विप्राः ।

[ततो यजमानो वक्ष्यमाणैकसप्तति वाक्यानि पठन् प्रतिवाक्यं पात्रे जलं पातयेत् तत्रा 'रिष्टनिरस-

नमस्तु' 'यत्पाप' मिति द्वाभ्यां, 'हताश्च ब्रह्मद्विष' इत्यादिभिः सप्तवाक्यैश्च पात्राद्बहिरुत्तरतो जलं पातनीयमिति सम्प्रदायः] ॐशान्तिरस्तु १ ॐ पुष्टिरस्तु २ ॐतुष्टिरस्तु ३ ॐ वृद्धिरस्तु ४ ॐअविघ्नमस्तु ५ ॐआयुष्यमस्तु ६ ॐआरोग्यमस्तु ७ ॐशिवमस्तु ८ ॐशिवं कर्मास्तु ९ ॐ कर्मसमृद्धिरस्तु १० ॐ धर्मसमृद्धिरस्तु ११ ॐ वेदसमृद्धिरस्तु १२ ॐ शास्त्रसमृद्धिरस्तु १३ ॐ धनधान्यसमृद्धिरस्तु १४ ॐ पुत्र-पौत्रसमृद्धिरस्तु १५ ॐ इष्टसम्पदस्तु १६ (बहिः) ॐ अरिष्टनिरसनमस्तु १७ ॐ यत्पापं (रोगोऽशुभमकल्याणं) तत् (दूरे) प्रतिहतमस्तु १८ (अन्तः) ॐ यत् (यत्) श्रेयस्तदस्तु १९ ॐ उत्तरे कर्मणि निर्विघ्नमस्तु २० ॐ उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु २१ ॐ उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः सम्पद्यन्ताम् २२ ॐ तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्र (ग्रहलग्न) सम्पदस्तु २३ ॐ तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रग्रहलग्नाधिदेवताः प्रीयन्ताम् २४ ॐ तिथिकरणे (स) मुहूर्ते सनक्षत्रे सग्रहे (सलग्ने)

साधिदेवते प्रीयेताम् २५ ॐ दुर्गापाञ्चाल्यौ प्रीयेताम् २६ ॐ अग्नि पुरोगा विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम् २७ ॐ इन्द्रपुरोगा मरुद्गणाः प्रीयन्ताम् २८ ब्रह्मपुरोगाः सर्वे वेदाः प्रीयन्ताम् २९ ॐ विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः प्रीयन्ताम् ३० ॐ माहेश्वरीपुरोगा उमामातरः प्रीयन्ताम् ३१ ॐ वसिष्ठपुरोगा ऋषिगणाः प्रीयन्ताम् ३२ ॐ अरुन्धतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयन्ताम् ३३ ॐ ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयन्ताम् ३४ ॐ श्रीसरस्वत्यौ प्रीयेताम् ३५ ॐ श्रद्धामेधे प्रीयेताम् ३६ ॐ भगवती कात्यायनी प्रीयताम् ३७ ॐ भगवती माहेश्वरी प्रीयताम् ३८ ॐ भगवती पुष्टिकरी प्रीयताम् ३९ ॐ भगवती तुष्टिकरी प्रीयताम् ४० ॐ भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम् ४१ ॐ भगवती वृद्धिकरी प्रीयताम् ४२ ॐ भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम् ४३ ॐ सर्वाः कुलदेवताः प्रीयन्ताम् ४४ ॐ सर्वा ग्रामदेवताः प्रीयन्ताम् ४५ ॐ सर्वा इष्टदेवताः प्रीयन्ताम् ४६ (बहिः) ॐ हताश्च

ब्रह्मद्विषः ४७ ॐ हताश्च परिपन्थिनः ४८ ॐ हताश्च विघ्नकर्त्तारः ४६ ॐ शत्रवः पराभवं यान्तु ५० ॐ शाम्यन्तु घोराणि ५१ ॐ शाम्यन्तु पापानि ५२ ॐ शाम्यन्त्वीतयः ५३ (अन्त) ॐ शुभानि वर्द्धन्ताम् ५४ ॐ शिवा आपः सन्तु ५५ ॐ शिवा ऋतवः सन्तु ५६ ॐ शिवा अग्नयः सन्तु ५७ ॐ शिवा आहुतयः सन्तु ५८ ॐ शिवा वनस्पतयः सन्तु ५६ ॐ शिवा ओषधयः सन्तु ६० ॐ शिवा अतिथयः सन्तु ६१ ॐ अहोरात्रे शिवे स्याताम् ६२

ॐ निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ६३ ॐ शुक्राङ्गारक-बुध-बृहस्पति-शनैश्चर-राहु-केतु-सोमसहिता आदित्यपुरोगाः सर्वे ग्रहाः प्रीयन्ताम् ६४ ॐ भगवान्नारायणः प्रीयताम् ६५ ॐ भगवान् पर्जन्यः प्रीयताम् ६६ ॐ भगवान् स्वामी महासेनः प्रीयताम् ६७ (ॐ पुरोऽनुवाक्यया यत्पुण्यं तदस्तु ६८ ॐ याज्यया यत्पुण्यं तदस्तु ६६ ॐ वषट्कारेण यत्पुण्यं तदस्तु ७० ॐ प्रातः

सूर्योदये यत्पुण्यं तदस्तु ७१) ततः कर्त्ता "एतत्कल्याणयुक्तं पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये" इति वदेत् । "वाच्यताम्" इति विप्रा वदेयुः ।

(यजमानः)ब्राह्मं पुण्यमहर्यच्च सृष्टय्युत्पादनकारकम् ।
वेदवृक्षोद्भवं नित्यं तत्पुण्याहं ब्रुवन्तु नः ॥

"भो ! ब्राह्मणाः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे करिष्यमाणसप्रासादसवाहन [पञ्चायतन] शिवाद्यचलप्रतिष्ठाकर्मणः [अस्य कर्मणः] पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु" इति क्रमेण मन्द-मध्यमोच्चस्वरेण त्रिर्ब्रुयात्। ॐ 'पुण्याहम्' इतितथैव त्रिर्विप्रा ब्रूयुः ।

[यजमानः]ॐपुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसाधियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥

[यजमानः]पृथिव्यामुद्धृतायांतु यत्कल्याणं पुराकृतम्।
ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत्कल्याणं ब्रुवन्तु नः ॥

"भो ! ब्राह्मणाः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे अस्य अमुकयाग कर्मणः कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु" इति पूर्ववत्क्रमेण त्रिः कर्त्ता वदेत् "ॐ कल्याणम्" इति तथैव त्रिर्विप्रा ब्रूयुः ।

[यजमानः]ॐयथेमां व्वाचं कल्याणीमावदानिजनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳪशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणायच। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मेकामः समृद्ध्यतामुप मादो नमतु॥

[यजमानः]सागरस्यतुयाऋद्धिर्महालक्ष्म्यादिभिःकृता। सम्पूर्णा सुप्रभावा च तां च ऋद्धिं ब्रुवन्तु नः॥ "भो ! ब्राह्मणाः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे अस्य अमुकयाग कर्मणः ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु"। इति पूर्ववत्क्रमेण त्रिः कर्त्ता वदेत्। ॐ [कर्म] ऋद्ध्यताम् इति त्रिर्विप्राः ब्रूयुः।

(यजमानः) ॐसत्रस्यऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता ऽअभूम।

दिवं पृथिव्या ऽअद्‌ध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वज्योंतिः।

(यजमानः) स्वस्तिस्तु या विनाशाख्या पुण्यकल्याणवृद्धिदा।

विनायकप्रिया नित्यं तां च स्वस्ति ब्रुवन्तु नः॥

"भो ! ब्राह्मणाः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे अस्मै अमुक याग कर्मणे स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु" इति पूर्ववत्क्रमेण त्रिः कर्त्ता वदेत्। "ॐ आयुष्मते स्वस्ति" इति त्रिर्विप्रा ब्रूयुः।

ॐस्वस्तिनऽइन्द्रोव्वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाव्विश्ववेदाः।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिःस्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु
(दानखण्डे एतावदेव पुण्याहवाचनम्)॥

(यजमानः) मृकण्डसूनोरायुर्यद्ध्रुवलोमशयोस्तथा।
आयुषा तेन संयुक्ता जीवेम शरदः शतम्॥
"शतं जीवन्तु भवन्तः" (इति विप्रा ब्रूयुः)।

ॐ शतमिन्नुशरदोऽअन्तिदेवा यत्रा नश्चक्रा जरसन्तनूनाम।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मद्ध्यारीरिषतायुर्गन्तोः॥

(यजमानः) शिवगौरीविवाहे या या श्रीरामे नृपात्मजे।
धनदस्य गृहे या श्रीरस्माकं साऽस्तु सद्मनि॥
"अस्तु श्रीः" (इति विप्रा ब्रूयुः)

ॐ मनसः काममाकूतिं व्वाचः सत्यमशीय।
पशूनाᳬरूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा॥
ॐ प्रजापतिर्लोकपालो धाता ब्रह्मा च देवराट्।
भगवान् शाश्वतो नित्यं स नो रक्षतु सर्वतः॥
'भगवान् प्रजापतिः प्रीयताम्' (इति पात्रे जलं क्षिपेत्)
ॐ प्रजापतेनत्वदेतान्यन्यो व्विश्वारूपाणिपरिताबभूव।
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नोऽअस्तु व्वयᳬस्याम पतयोरयीणाम्
आयुष्मते स्वस्तिमते यजमानाय दाशुषे।
श्रिये रत्नाभिषः सन्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः॥
देवेन्द्रस्य यथा स्वस्ति तथा स्वस्ति गुरोर्गृहे।
एकलिङ्गे यथा स्वस्ति तथा स्वति सदा मम॥
ॐ "आयुष्मते स्वस्ति' [इति विप्राः]।
ॐ प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येनव्विश्वाः परि द्विषो व्वृणक्ति व्विन्दते व्वसु॥
"कृतैतत् दानखण्डोक्त-पुण्याहवाचनकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च पुण्याहवाचकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विभज्य मनसोद्दिष्टां दक्षिणां दातुम-

हमुत्सृज्ये' । [इदं दक्षिणादानमभिषेकान्ते युक्तं अभिषेकस्य पुण्याहवाचनान्तभूतत्वात्]

ततः कर्त्ता-'अस्मिन्पुण्याहवाचने न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनात् श्रीमहागणपति-प्रसादाच्च परिपूर्णोऽस्तु' । इति वदेत् समाचारात् । "अस्तु परिपूर्णोऽस्तु" इति वदेत् समाचारात् । "अस्तु परिपूर्णः" इति द्विजाः ब्रूयुः । अनेन पुण्याह वाचनेन प्रजापतिः प्रीयताम् ।

अथ—अभिषेकः

ततो अभिषेके विप्राः कर्तुर्वामतः पत्नी [तत्सहचरितपुत्रादिकमपि] मुपवेश्य पातितेन जलेन पल्लव-दूर्वाभिरुदङ्मुखास्तिष्ठन्त उपविष्टा वा सपत्नीकं कर्त्ता-रमभिषिञ्चेयुः । तत्र अभिषेक मन्त्राः—

ॐ पय÷पृथिव्याम्पय ऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ।
पयस्वती÷प्रदिश÷सन्तु मह्यम् ॥ १ ॥

ॐ पञ्चनद्यः सरस्वती मपियन्ति सस्रो तसः ।
सरस्वती तु पञ्चधासो देशे ऽभवत्सरित् ॥ २ ॥

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्यऽ ऋतसदनमसि वरुणस्यऽ ऋतसदन मासीद ॥ ३ ॥

ॐ पुनन्तुमादेवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनीहिमा॥४॥ ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्म्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ ५ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।

सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्म्राज्येनाभि-षिञ्चामि ॥ ६ ॥

ॐ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।

अश्विनोर्भैषज्ज्येन तेजसे ब्रह्मवर्च्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्ज्येन व्वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामी-न्द्रस्येन्द्रियेणबलाय श्रियै यशसे ऽभिषिञ्चामि ॥७॥

ॐ व्विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ॥
यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥८॥
ॐ धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
सचेतसो व्विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥९॥
ॐ त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँ: पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुतत्मना ॥ १० ॥
ॐ अन्नपतेन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्रप्रदाता रन्तारिषऽऊर्ज्जंन्नो धेहिद्विपदे चतुष्पदे॥११॥
ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षठं शान्तिः पृथिवी शान्ति-
रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
व्वनस्पतयःशान्तिर्व्विश्वे देवाःशान्तिर्ब्रह्मशान्तिः
सर्व्वठं शान्तिः शान्ति रेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि
॥१२॥ ॐयतो यतः समीहसे ततोनोऽअभयङ्करु।
शन्नःकुरुप्रजाभ्यो भयन्नः पशुभ्यः ॥ १३ ॥

अभिषेक श्लोकाः। सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णु-
महेश्वराः। वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो
विभुः ॥१॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय
ते। आखण्डलो ऽग्निर्भगवान्यमो वै निरृतिस्तथा

॥२॥ वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः।
ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु त्वां सदा ॥३॥
कीर्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिस्तु मातरः
॥४॥ एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः।
आदित्य चन्द्रमा भौम बुधजीवसितार्कजाः ॥५॥
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥६॥ ऋषयो
मनवो गावो देवमातर एव च। देवपत्न्यो द्रुपा
नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥७॥ अस्त्राणि सर्व-
शस्त्राणि राजानो वाहनानि च। औषधानि च
रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥८॥ सरितः सागराः
सर्वे तीर्थानि जलदा नदाः। एते त्वामभिषिञ्चन्तु
धर्मकामार्थसिद्धये ॥९॥

इत्यभिषिच्य "अमृताभिषेकोऽस्तु" इति वदेयुः।
केचिदभिषेकं न कुर्वन्तीति प्रयोगदीपे। "कृतैतदभि-
षेककर्मणः समृद्ध्यर्थं दक्षिणां दास्ये" इति केचित्।
इति स्वस्तिपुण्याहवाचनप्रयोगः ॥

अथ षोडश मातृका पूजन प्रयोगः

मातृपूजा। पीठे (कोष्ठषोडशके) कृताग्न्युत्तारण प्राण प्रतिष्ठासु संस्थापितासु प्रतिमासु, अभावे पटादौ लिखितासु, अक्षतपुञ्जेषु वा प्राक्संस्था उदक्संस्था वा सगणाधिपा गौर्यादिदेवता आवाहयेत्।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि स्थापयामि ॥१॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः गौरीमावाहयामि स्थापयामि ॥२॥ ॐ भूर्भुवः स्वः पद्मायै नमः पद्मामावाहयामि स्थापयामि ॥३॥ ॐ भूर्भुवः स्वः शच्यै नमः शचीमावाहयामि स्थापयामि ॥४॥ ॐ भूर्भुवः स्वः मेधायै मेधामावाहयामि स्थापयामि ॥५॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्र्यै नमः सावित्रीमावाहयामि स्थापयामि ॥६॥ ॐ भूर्भुवः स्वः विजयायै नमः विजयामावाहयामि स्थापयामि ॥७॥ ॐ भूर्भुवः स्वः जयायै नमः जयामावाहयामि स्थापयामि ॥८॥ ॐ भूर्भुवः स्वः देवसेनायै नमः देवसेनामावाहयामि

स्थापयामि ॥९॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वधायै नमः स्वधामावाहयामि स्थापयामि ॥१०॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहायै नमः स्वाहामावाहयामिस्थापयामि ॥११॥ॐ भूर्भुवः स्वः मातृभ्यो नमः मातृरावाहयामि स्थापयामि ॥१२॥ॐ भूर्भुवः स्वः लोकमातृभ्योनमः लोकमातृरावाहयामिस्थापयामि ॥१३॥ॐ भूर्भुवः स्वः हृष्ट्यै नमः हृष्टिमावाहयामि स्थापयामि ॥१४॥ ॐ भूर्भुवः स्वः पुष्ट्यै नमः पुष्टिमावाहयामि स्थापयामि ॥ १५ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः तुष्ट्यै नमः तुष्टिमावाहयामि स्थापयामि ॥ १६ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः (अमुकनाम्न्यै आत्मनः) कुलदेवतायै नमः (अमुकनाम्नीं आत्मनः) कुलदेवतामावाहयामि स्थापयामि ॥ १७ ॥ गणेशः सुप्रतिष्ठितो वरदो भवतु गौरी सुप्रतिष्ठिता वरदा भवतु, इत्यादि मन्त्रावृत्या पृथक् पृथक्, गणेशपूर्वक-गौर्यादिषोडशमातृभ्यो नमः इति समुदितरूपेण वा, सर्वास्तन्त्रेण वा प्रतिष्ठाप्य षोडशभिरुपचारैः काण्डानुसमयेन पदार्थानुसमयेन वा प्रत्येकं सह वा सर्वाः पूजयेत् । (पदार्थानुसमयपक्षेऽपि उप-

चाराः सर्वाभ्यः पृथक् पृथगेव देवाः तन्त्रेणेति सम्प्रदायः) पूजनं समाप्य ।

'आयुरारोग्यमैश्वर्यं ददध्वं मातरो मम ।
निर्विघ्नं सर्वकार्येषु कुरुध्वं सगणाधिपाः॥'

इति नारिकेलफलं समर्प्य (कृताञ्जलिः) गणेशपूर्वकगौर्यादिषोडशमातॄणां पूजनविधौ यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं मातॄणां प्रसादात्परिपूर्णमस्तु । अनया पूजया सगणेशगौर्यादिषोडशमातरः प्रीयन्ताम्।

॥ इति षोडश मातृका प्रयोगः ॥

अथ वसोर्द्धाराप्रयोग । मातृपूजासन्निहिते कुड्ये यथाचारं कुङ्कुमेन (एकं द्वौ त्रीन् चतुर पञ्च षट् सप्त) बिन्दून् (अधोऽधः क्रमेण) कृत्वा (तत्र) घृतेन दुग्धेन वा सप्तसु बिन्दुषु सप्तधाराः पञ्चधारा वा यथासम्भवं प्राक्संस्था उदक्संस्था वा प्रादेशमात्री कुर्यात् । तत्र मन्त्रः । ॐ व्वसोः पवित्रमसि शतधारं व्वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु व्वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा । ततः ॐ 'कामधुक्षः' इत्येता

वतैव मन्त्रेण ता धारा (विन्दून्) ऊर्ध्वभागे मिथः श्लिष्टाः कुर्यात्। तत ॐ भूर्भुवः स्वः श्रियै नमः श्रियमावाहयामि स्थापयामि ॥१॥ ॐ भूर्भुव स्वः लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मी मावाहयामि स्थापयामि ॥२॥ ॐ भूर्भुव स्व धृत्यै नम धृतिमावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥ भूर्भुवः स्वः मेधायै नमः मेधामावाहयामि स्थापयामि ॥ ४ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहायै नमः स्वाहामावाहयामि स्थापयामि ॥ ५ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः प्रज्ञायै नमः प्रज्ञामावाहयामि स्थापयामि ॥ ६ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सरसरस्वत्यै नमः सरस्वतीमा वाहयामि स्थापयामि।।७।। (पञ्चधारापक्षे प्रज्ञासरस्वत्योरभावः) वसोर्द्धारादेवताभ्यो नमः श्रियादिसप्तघृतमातृभ्यो नमः इति पूजनम्। 'आचरितवसोर्द्धारापूजनविधौ यन्न्यूनातिरिक्तं तत्सर्वं परिपूर्णमस्तु' इति कृताञ्जलिः प्रार्थयेदिति। अनया पूजया श्रियादिसप्तघृतमातरः प्रीयन्ताम्।

॥ इति सप्तघृत मातृका प्रयोगः ॥

अथ आयुष्यमन्त्राः

करिष्यमाणादः कर्मणो ऽमङ्गलनाशार्थमायुष्य-मन्त्र जपं करिष्ये ।

ॐ आयुष्य ञ्वर्चस्यठं० रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदठं०हिरण्यं ञ्वर्च्चस्व ज्जैत्रायाविशतादुमाम् ॥१॥

न तद्रक्षाᳬसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजᳬह्ये तत् ।

यो बिभर्तिदाक्षायणᳬ० हिरण्यठं० स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥२॥

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यठं० शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।

तन्मऽआबध्नामि शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासम् ॥ ३ ॥

॥ इति आयुष्य सूक्त जपः ॥

अथ साङ्कल्पिकाभ्युदयिक श्राद्धम् ।

प्रातः पूर्वाह्णे यज्ञोपवीती प्राङ्मुखो
(दैवे उदङ्मुखो वा) ऽष्टौ
कुशवटून् (दैवे प्राङ्मुखान्)

(प्रागग्रान्) स्वोत्तरभागे, पित्र्ये उदङ्मुखान् (उदगग्रान्) स्वदक्षिणे, प्रागुपक्रमान्पश्चादपवर्गान्) संस्थाप्य पातितदक्षिणजानुः ।

प्रदक्षिणधर्मेण यवैस्त्रुभिर्दर्भैर्देवतीर्थेन पाद्यं दद्यात् । पादप्रक्षालनम् ।

सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥ गोत्राः मातृ-पितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥

गोत्राः पितृ-पितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इद वः पाद्यं पादावनेजन पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥

द्वितीय गोत्राः मातामह-प्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं स्वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥

आसनदानम् ।

सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ

भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमो नमः नान्दी-श्राद्धेक्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तः तथा प्राप्नुवामः ॥

गोत्राः मातृपितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमो नमः नान्दी-श्राद्धेक्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तः तथा प्राप्नुवामः ॥

गोत्राः पितृपितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमो नमः नान्दी-श्राद्धेक्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तः तथा प्राप्नुवामः ॥

द्वितीय गोत्राः मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमो नमः नान्दीश्राद्धेक्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तः तथा प्राप्नुवामः ॥

गन्धादिदानम् ॥

सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ।

गोत्राः मातृपितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥

गोत्राः पितृपितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥

द्वितीय गोत्राः मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥

भोजननिष्क्रयदानम् ॥

ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यमृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥

गोत्राः मातृपितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥

गोत्राः पितृपितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्न-निष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः॥ द्वितीय गोत्राः मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखा ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्म-ब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः।

स-क्षीरयवमुदकदानम्॥

सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम्॥ गोत्राःमातृपितामही-प्रपितामह्यःनान्दीमुख्यः प्रीयन्ताम्

गोत्राः पितृपितामहप्रपितामहाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम्। द्वितीय गोत्राः मातामह-प्रमातामह-वृद्ध-प्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम्॥ जल अक्षत-पुष्पदानम् 'शिवा आपः सन्तु'इति जलम्। 'सौमनस्यमस्तु' इति पुष्पम्॥ 'अक्षतं चारिष्टञ्चा-ऽस्तु' इत्यक्षतान्॥

जल धारादानम् 'अघोराः पितरः सन्तु' इति पूर्वाग्रां जलधारां दद्यात्।

आशीः प्रार्थना ततो यजमानः कृताञ्जलिः प्रार्थयेत्॥

ॐ गोत्रन्नो वर्धतां दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ॥

श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं चनोऽस्तु ।
अन्नं चनो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ॥
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ॥
एताः सत्या आशिष सन्तुः ॥

ब्राह्मणाः—सन्त्वेताः सत्या आशिष इति ॥

दक्षिणादानम् ॥

ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये ॥

गोत्राः मातृपितामहीप्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य० ॥

गोत्राः पितृपितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठा-

सिद्धयर्थं द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये ॥

द्वितीय-गोत्राः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखा ॐभूर्भुवः स्वः कृतस्य० ॥

विसर्जन मन्त्राः ॐ उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ॥

अभि देवाँ ॥ २ ॥ऽइयक्षते ॥ इडामग्ने पुरुदᳪसᳪसनिं गोःशश्वत्तमᳪहवमानाय साध ॥

स्यान्नः सुनुस्तनयो व्विजावाग्ने साते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ यजमानः—ब्राह्मणानां प्रतिकथयति नान्दीश्राद्धं सम्पन्नम् ।

ब्राह्मणाः—सुसंपन्नम् । 'व्वाजे वाजे०' इति विसृज्य । ॐ व्वाजेवाजेऽवत व्वाजिनो नो धनेषु व्विप्रा ऽअमृता ऽऋतज्ञाः ॥ अस्य मद्ध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता या त पथिभिर्द्देवयानैः ॥ आमा वाजस्यत्यनुव्रज्य ॥ ॐ आ मा व्वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी व्विश्वरूपे ॥ आ मा गन्तां पितरामातरा चा मा सोमो ऽअमृतत्वेन गम्यात् ॥

विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति विसृज्य ॥ यजमानः— मयाचरिते सांकल्पिकनान्दीश्राद्धे न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनाच्छ्रीगणेशप्रसादाच्च परिपूर्णोऽस्तु । ब्राह्मणाः—अस्तु परिपूर्णः ।

॥ इति साङ्कल्पिकापार्त्रिकाभ्युदयिकश्राद्धम् ॥

अथाचार्यवरणम् । यजमानः देशकालौ सङ्कीर्त्य 'असुक गोत्रोत्पन्नोऽहममुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः) अमुगोत्रोत्पन्नममुकशर्माणं ब्राह्मणमस्मिन् ग्रहयज्ञ कर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैः आचार्यत्वेन त्वामहं वृणे'। आचार्यः-'वृतोऽस्मि' इति वदेत् । ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥ इति मन्त्रं पठेत् । ततो यजमानः-पाद्य-अर्घ्य-गन्ध-अक्षत-पुष्पमालादिभिराचार्यं सम्पूज्य, तस्य दक्षिणहस्ते रक्तसूत्ररूपकङ्कणबन्धनं कुर्यात् । ॐ यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यठं० शतानीकाय

सुमनस्यमानाः। तन्मऽआ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ तत आचार्यं प्रार्थयेत्---ॐ बृहस्पते ऽअति यदर्य्यो ऽअर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः। तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत ॥ यावत्कर्म समाप्येत तावत्त्वमाचार्यो भव ॥ 'भवामि' इत्याचार्यो वदेत्।

अथ ब्रह्मवरणम्। यजमानः---'अस्मिन् ग्रहयज्ञकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे' ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन ऽआवः। स बुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदविशारदः। तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ॥

अथ सदस्यवरणम्। यजमानः---'अस्मिन् ग्रहयज्ञकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं सदस्यत्वेन त्वामहं वृणे'। ॐ सदसस्पति-

मद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्म्यम् । सनिं मेधामयासिषᳪ स्वाहा ॥ त्वन्नो गुरुः पिता माता त्वं प्रभुस्त्वं परायणः । आपद्विमोक्षणार्थाय सदस्यो भव मे मखे॥

अथ गाणपत्यवरणम् । यजमानः---'अस्मिन् ग्रहयज्ञकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं गाणपत्यत्वेन त्वामहं वृणे' । ॐगणानां त्वा० ।

अथोपद्रष्टृवरणम् । यजमानः---अस्मिन् ग्रहयज्ञकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं उपद्रष्टृत्वेन त्वामहं वृणे' । ॐ ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्याया नुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या ऽअश्वसादᳪ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥ भगवन् सर्वकर्मज्ञ सर्वधर्मभृतां वर । वितते मम यज्ञेऽस्मिन्नुपद्रष्टा भव द्विज ॥

अथ ऋत्विग्वरणम् । यजमानः-- अस्मिन् ग्रहेयज्ञकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकश

र्माणं ब्राह्मणं ऋत्विक्त्वेन (होतृत्वेन) त्वामहं वृणे'।
ॐ ब्राह्मणासः पितरः सोम्म्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी
ऽअनेहसा। पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा
माकिर्न्नो ऽअघशंस ऽईशत ॥ भगवन् सर्वधर्मज्ञ
सर्वधर्मभृताम्वर।
वितते मम यज्ञेऽस्मिन् ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥
एवमेव चतुरोऽष्टौ वा द्वारपालान् वृणुयात्।

अथ पूर्वद्वारपालवरणम्। ॐ अग्निमीडे पुरोहितम्०। ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः। अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र द्वारपालो मखे भव ॥

अथ दक्षिण द्वारपालवरणम्। ॐ इषे त्वोर्ज्जे त्वा०। कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः। काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र द्वारपालो मखे भव ॥

अथ पश्चिमद्वारपालवरणम्। ॐ अग्न आयाहि वीतये० सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः। भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र द्वारपालो मखे भव ॥

अथ उत्तरद्वारपालवरणम्। ॐ शन्नो देवीः० बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः। वैशम्पायन

विप्रेन्द्र द्वारपालो मखे भव ॥ इति ऋत्विजो वृत्वा प्रार्थयेत्---ब्राह्मणाः सन्तु मे शास्ताः पापात्पान्तु समाहिताः । देवानां चैव दातारस्त्रातारः सर्व देहिनाम् ॥ १ ॥

जपयज्ञैस्तथा होमैर्दानैश्च विविधैः पुनः । देवानाञ्च ऋषीणाञ्च तृप्त्यर्थं याजकाः स्मृताः ॥२॥ येषां देहे स्थिता वेदाः पावयन्ति जगत्त्रयम् । रक्षन्तु सततं ते मां ग्रहयज्ञे व्यवस्थिताः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ४ ॥ पावनाः सर्ववर्णानां ब्राह्मणा ब्रह्मरूपिणः । सर्वकर्मरता नित्यं वेदशास्त्रार्थकोविदाः ॥ ५ ॥ श्रोत्रियाः सत्यवाचश्च देवध्यानरताः सदा । यद्वाक्यामृतसंसिक्ता ऋद्धिं यान्ति नरद्रुमाः ॥६॥ अङ्गीकुर्वन्तु कर्मैतत्कल्पद्रुमसमाशिषः । यथोक्तनियमैर्युक्ता मन्त्रार्थे स्थिरबुद्धयः ॥ ७ ॥ यत्कृपालोचनात् सर्वा ऋद्धयो वृद्धिमाप्नुयुः । ग्रहयागे मया पूज्याः सन्तु मे नियमान्विताः ॥ ८ ॥ अक्रोधनाः शौचपराः

सततं ब्रह्मचारिणः । ग्रहध्यानरता नित्यं प्रसन्नमनसः सदा ॥९॥ अदुष्टभाषणाः सन्तु मा सन्तु परनिन्दकाः । ममापि नियमा ह्येते भवन्तु भवतामपि ॥ १० ॥ ऋत्विजश्च यथा पूर्वं शक्रादीनां मखेऽभवन् । यूयं तथा मे भवत ऋत्विजो द्विजसत्तमाः ॥ ११ ॥ अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया । सुप्रसन्नैः प्रकर्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम् ॥ १२ ॥ ततो यजमानदक्षिणहस्ते कङ्कणबन्धनम् । ॐ यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः । तन्म ऽआ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्य्यथासम् ॥ दाक्षायणा शतानीकमबध्नन्सुहिरण्यकम् । आबध्नामि तदेवाहमायुष्यस्याभिवृद्धये ॥ ततो यजमानपत्न्याः वामहस्ते कङ्कणबन्धनम् । ॐ तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः । नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे ऽअधि रोचने दिवः ॥ ग्रहयज्ञफलावाप्त्यै कङ्कणं सूत्रनिर्मितम् । हस्ते बध्नामि सुभगे त्वं जीव शरदां शतम् ॥

यजमानः—'यथाविहितं कर्म कुरु'। (एकतन्त्रपक्षे-कुरुध्वम्)। ब्राह्मणः– यथाज्ञानं करवाणि'। (एकतन्त्र-पक्षे करवामः)। इत्याचार्य-वरणम्।

॥ अथ मण्डप प्रवेश प्रयोगः ॥

सपत्नीको यजमानः आचार्यः ब्रह्म, ऋत्विक्समन्वितो गन्धमाल्यफलादिभिः अर्चितकलशहस्तो मंगलवाद्यघोषेण "भद्रं कर्णेभिः" इति वेदमंत्रघोषेण च समन्वितो मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमद्वारं आगत्य। तत्र चतुर्भुजां शुक्लवर्णां कूर्मपृष्ठोपरिस्थिताम् ॥ पद्म-शंख-चक्रशूल-धरां भूमिं ध्यात्वा ॥ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ दंष्ट्राग्रैर्लीलया देवी विष्णुना शंकरेण च ॥ पार्वत्या चैव गायत्र्या स्कन्दं वैश्रवणेन च ॥ यमेन पूजिते देवि सौभाग्यं च प्रयच्छ मे ॥ इत्यनेन मन्त्रेण अर्घ्यं दत्त्वा 'स्योना पृथिवि" इति मन्त्रेण पंचोपचारैः भूमिं सम्पूज्य ॥ अर्घ्यं दत्त्वा पश्चिम द्वारेणैव दक्षिणपादेन सऋत्विग्यजमानो मण्डपान्तः प्रविशेत ॥

दक्षिणद्वारेण पत्नीं प्रविशेत् ॥ पूर्वद्वारे द्रव्यानयम् ॥ पूजासम्भारानुत्तरद्वारेण प्रवेशयेत् ॥ ततो आग्नेयकोणे कुम्भंस्थापयेत् ॥ ततः आचार्यो अग्न्यायतनात्पश्चिमत् उपविश्य आचम्य प्राणानायम्य ॥ देशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रः अमुकशर्माहं शरीरशुद्धयर्थं "पुरुषसूक्तंत्रिवारं एकवारं वाजपेत् ॥" तत्र मन्त्राः—

॥ अथ पुरुषसूक्तम् ॥

हरि॑ ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि ᳪ सर्वतस्पृत्वात्त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥
पुरुष ऽएवेद ᳪ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ३।
त्रिपादूर्ध्वं ऽउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्क्रामत्साशनानशने ऽअभि।४।
ततो विराडजायत विराजो ऽअधि पुरुषः।
स जातो ऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऽऋचः सामानि जज्ञिरे !
छन्दाᳬसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥
तस्मादश्वा ऽअजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽअजावयः ॥ ८ ॥
तं यज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः ।
तेन देवा ऽअयजन्त साध्या ऽऋषयश्च ये ॥ ९ ॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा ऽउच्येते ॥ १० ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रो ऽअजायत ॥ ११ ॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो ऽअजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥
नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्याम्भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ ॥ अकल्पयन् १३
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञन्तन्वाना ऽअबध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥१५॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
त ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः
सन्ति देवः ॥१६॥

अथ दिग्रक्षणम् । आचार्यः—देशकालौ सङ्कीर्त्य अस्मिन् ग्रहयज्ञकर्मणि यजमानेन वृताऽहमाचार्यकर्म करिष्ये' इति सङ्कल्य वामहस्ते गौरसर्षपान् गृहीत्वा दिग्रक्षणं कुर्यात् । ॐ रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे निष्टयो यममात्यो निचखाने दमहं तं बगल मुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्न्निचखानेदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥१॥ रक्षोहणो वो व्वलगहनः प्रोक्षामि व्वैष्णवान्त्रक्षोहणो वो व्वलगहनोऽवनयामि व्वैष्णवान्त्रक्षोहणो वो व्वलगहनोऽवस्तृणामि व्वैष्णवान्त्रक्षोहणौ वां व्वलगहना ऽउपदधामि

व्वैष्णवी रक्षोहणौ वां व्वलगहनौ पर्य्यूहामि व्वैष्णवो व्वैष्णवमसि व्वैष्णवास्त्थ ॥ २ ॥ रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳ रक्ष ऽइदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामोदमहꣳ रक्षोऽवबाध ऽइदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्प्रोर्ण्णुवाथां व्वायो व्वे स्तोकानामग्निराज्ज्यस्य व्वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऽऊर्द्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥३॥ रक्षोहा व्विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रुद्रोणे सधस्थमासदत् ॥४॥ अपसर्पन्तु ते भूताये भूता भूमिसंस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ १ ॥ अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् । सर्वेषामविरोधेन ग्रहयज्ञ समारभे ॥ २ ॥ यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा । स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥३॥ भूतानि राक्षसा वापि येऽत्र तिष्ठन्ति केचन । ते सर्वेऽप्यपगच्छन्तु ग्रहयागं करोम्यहम् ॥ ४ ॥ इति मन्त्रैः पूर्वादिदिक्षु सर्षपान् विकिरेत् । उदकोपस्पर्शः । इति दिग्रक्षणम् ।

अथ पञ्चगव्यादिकरणम् । एकस्मिन् पात्रे

पञ्चगव्यं सम्पादयेत् । तद्यथा—ॐ तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्ग्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ इति गोमूत्रम् । ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वयेश्रियम् ॥ इति गोमयम् । ॐ आप्यायस्व समेतु ते व्विश्वतः सोमव्वृष्ण्यम् । भवा व्वाजस्य सङ्गथे ॥ इति पयः । ॐ दधिक्क्राव्णो ऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य व्वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्प्रण ऽआयूंषि तारिषत् ॥ इति दधि । ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामाऽसि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ इत्याज्यम् । ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्व्वाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्याम् ॥ इति कुशोदकमादाय ॐ इति प्रणवेन यज्ञकाष्ठेनालोड्य ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽऊर्ज्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२॥ तस्मा ऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३॥ इति त्रिभि

मन्त्रैः कर्मभूमिं सम्प्रोक्षेत् । ततः कृताञ्जलिः—
ॐ स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ इति मन्त्रं वारद्वयं पठित्वा भूमौ प्रादेशं कृत्वा 'देवा आयान्तु । यातुधाना अपयान्तु । विष्णो देवयजनं रक्षस्व' इति पञ्चगव्यादिकरणम् ।

अथ वास्तुस्थापनम्

ततो नैऋत्यकोणे वास्तु वेदिं निर्माय, पश्चिमदिशि उपविश्य आचम्य प्राणानायम्य । देशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रः अमुकशर्माहं प्रारीप्सितस्य अमुकयाग (रुद्र, विष्णु लक्ष्मी, गणेश) कर्मणः साङ्गतासिद्ध्यै मण्डपाङ्गवास्तु स्थापनं पूजनं च करिष्ये इति संकल्पं कुर्यात् ॥ ततः वास्तुवेद्याः ईशानादिक्रमेण वा आग्नेयादि क्रमेण चतुर्षु कोणेषु लोहशंकून्रोपयेत् ॥ तत्रमंत्रः—विशन्तु भूतले नागालोकपालाश्च सर्वतः । मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा । इति प्रतिशंकूरोपण-

मन्त्रावृत्तिः । ततः शंकुपार्श्वेषु सदीपदधि-माषाक्षतबलिं दद्यात् । तत्र बलिमन्त्राः ॥
अग्निभ्योऽयथसर्वेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिता ।
बलिं तेभ्यो प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥१॥
नैऋत्याधिपतिश्चैव नैऋत्यां ये च राक्षसाः ।
तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदन मुत्तमम् ॥२॥
वायव्याधिपतिश्चैव वायव्यां ये च राक्षसाः । बलिं तेभ्यो प्रयच्छामिपुण्यमोदनमुत्तमम् ॥३॥ ईशान्याधि-पतिश्चैव ईशान्यां ये समाश्रिताः । बलिं तेभ्यो प्रयच्छामि गृह्णन्तुसततसोत्सुकाः ॥४॥ ततो वास्तु-वेद्यां वस्त्रं प्रसार्य सुवर्णशलाकया कुंकुमेन प्राक्-पश्चिमायताः नवरेखाः दक्षिणोद्गयताश्च नवरेखा कुर्यात् ॥ यथा ॥

ॐ शान्तायै नमः ॥१॥ ॐ यशोवत्यै नमः ॥२॥ ॐ कान्तायै नमः ॥३॥ ॐ विशालायै नमः ॥४॥ ॐ प्राणवाहिन्यै नमः ॥५॥ ॐ सत्यै नमः ॥६॥ ॐ सुमत्यै नमः ॥७॥ ॐ नन्दायै नमः ॥८॥ ॐ सुभद्रायै नमः ॥९॥ इति नवरेखाः

प्रागपरायताः कृत्वा ॥ ततः ॥ ॐ हिरण्यायै नमः ॥१॥ ॐ सुव्रतायै नमः ॥२॥ ॐ लक्ष्म्यै नमः ॥३॥ ॐ विभूत्यै नमः ॥४॥ ॐ विमलायै नमः ॥५॥ ॐ प्रियायै नमः ॥६॥ ॐ जयायै नमः ॥७॥ ॐ बलायै नमः ॥८॥ ॐ विशोकायै नमः ॥९॥ इति नवरेखाः दक्षिणोत्तरायताः कृत्वा मध्यकोष्ठ चतुष्टयं एकीकृत्य ततः कोणेषु रेखां दद्यात् ॥

अथ वास्तुपूजनमन्त्राः

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ॥ इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्व्वंलोकं मऽ इषाण ॥ ॐ लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मीमा०॥१॥ ॐशञ्च मे मयश्च मे प्रियञ्च मेऽनुकामश्च मेकामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणञ्च मे भद्रञ्च मे श्रेयश्च मे व्वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ॐ यशोवत्यै नमः यशोवतीमा० ॥२॥ ॐ अम्बेऽअम्बिके० ॥ ॐ कान्तायै नमः कान्तामा० ॥३॥ ॐ आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः

संऽसच्छन्दो व्वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो व्विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो ब्भ्रजश्छन्दः सꣳस्तुप्छन्दोऽनुष्टुप् छन्द ऽएवश्छन्दो व्वरिवश्छन्दो व्वयश्छन्दो व्वयस्कृच्छन्दो व्विष्पर्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दोऽअङ्काङ्कं छन्दः ॥ ॐ सुप्रियायै नमः सुप्रियामा० ॥४॥ ॐ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ॥ व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ॐ विमलायै० विमलामा० ॥५॥ ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय ॥ पशूनाꣳ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥ ॐ श्रियै० श्रियमा० ॥६॥ ॐ व्वितञ्च मे वेद्यञ्च मे भूतञ्च मे भविष्यच्च मे सुगञ्च मे सुपथ्यञ्च म ऽऋद्धञ्च म ऽऋद्धिश्च मे क्लृप्तञ्च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ॐ सुभगायै० सुभगामा० ॥७॥ ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ॥ पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥ ॐ सुमत्यै० सुमतिमा० ॥८॥ ॐ इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिङ्गोः शश्वत्तमꣳ

हवमानाय साध ॥ स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्त्वस्मे ॥ ॐ इडायै० इडामा ॥१॥

ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥ ॐ धान्यायै० धान्यामा० ॥ १ ॥ ॐ प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तञ्च म आधीतञ्च मे वाक्च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रञ्च मे दक्षश्च मे बलञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ॐ प्राणायै० प्राणामा० ॥२॥ ॐ श्रीश्च ते० ॥ ॐ विशालायै० विशालामा० ॥ ३ ॥ ॐ परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्म्मतिरघायोः ॥ अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ॐ वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिन ऽआन्त्यायनाय स्वाहाऽन्त्याय भौवनाय

स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥ इयन्तेराण्मित्रायषन्तासि यमन ऽउर्ज्जे त्वा वृष्टयै त्वा प्रजानान्त्वाधिपत्याय ॥ ॐ जयायै० जयामा ॥ ६ ॥ ॐ इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ ऽआदित्यानां मरुताꣳ शर्द्ध ऽउग्ग्रम ॥ महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ॐ निशायै० निशामा० ॥ ७ ॥ ॐ अग्निर्ज्योतिः० ॥ ॐ विरजायै० विरजामा० ॥८॥ ॐ समक्ख्ये देव्याधिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा । मा मऽ आयुः प्रमोषीर्मोऽ अहन्तवव्वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥ ॐ विभवायै० विभवामा० ॥९॥

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्स्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ॐ भू० शिखिने नमः शिखिनमा०॥१॥ ॐ शन्नो व्वातः पवताꣳ शन्नस्तपतु सूर्य्यः ॥ शं न्नः कनिक्रदद्देवः पर्ज्जन्यो ऽअभिवर्षतु ॥ ॐ भू० पर्जन्याय० पर्जन्यमा० ॥ २ ॥ ॐ मर्म्माणि ते व्वर्म्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानु-

वस्ताम् ॥ उरोर्व्वरीयो व्वरुणस्ते कृणोतु जयन्त त्वानु देवा मदन्तु ॥ ॐ भू० जयन्ताय० जयन्तमा० ॥ ३ ॥ ॐ सजोषा ऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब व्वृत्रहा शूर व्विद्वान् ॥ जहि शत्रूँ ॥२॥ रप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि व्विश्वतो नः ॥ ॐ भू० कुलिशायुधाय० कुलिशायुधमा० ॥ ४ ॥ ॐ आ कृष्णेन रजसा व्वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ॥ हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ॐ भू० सूर्याय० सूर्यमा० ॥ ५ ॥ ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ॥ दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ॐ भू० सत्याय० सत्यमा० ॥ ६ ॥ ॐ आ त्वाहार्षमन्तरभू ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ॥ व्विशस्त्वा सर्व्वा व्वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥ ॐ भू० भृशाय० भृशमा० ॥ ७ ॥ ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती ॥ तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ॐ भू० आकाशाय० आकाशमा० ॥८॥ ॐ व्वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि ॥

नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ॐ भू० वायवे० वायुमा०॥९॥ ॐ पूषन् तव व्व्रते व्वयन्न रिष्येम कदाचन ॥ स्तोतारस्त ऽइह स्मसि ॥ ॐ भू० पूषणे० पूषाणमा० ॥१०॥ ॐ तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मद्ध्या कर्त्तोर्व्विततं सञ्जभार ॥ यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री व्वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ॐ भू० वितथाय० वितथमा० ॥११॥ ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया ऽअधूषत अस्तोषत स्वभानवो व्विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ॐ भू० गृहक्षताय० गृहक्षतमा० ॥१२॥ ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ॥ स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ ॐ भू० यमाय० यममा० ॥१३॥ ॐ गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः ॥ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः ॥ ॐ भू० गन्धर्वाय०

गन्धर्वमा० ॥१४॥ ॐ सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ॐ भू० भृङ्गराजाय० भृङ्गराजमा० ॥१५॥ ॐमृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत ऽआजगन्था परस्याः ॥ सृकꣳ सꣳ शाय पविमिन्द्र तिग्मं विशत्रून् ताड्ढिवि मृधो नुदस्व ॥ ॐ भू० मृगाय० मृगमा० ॥१६॥ ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि ॥ उशन्नुशत ऽआवह पितृन्हविषे ऽअत्तवे ॥ ॐ भू० पितृभ्यो० पितृना० ॥१७॥ ॐ द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे ऽअन्यान्या वत्समुप धापयेते ॥ हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो ऽअन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ ॐ भू० दौवारिकाय० दौवारिकमा० ॥१८॥ ॐ नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्रा ऽउपश्रिताः ॥ तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ॐ भू० सुग्रीवाय० सुग्रीवमा० ॥१९॥ ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो

गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्व-
रूपेभ्यश्च वो नमः ॥ ॐ भू० पुष्पदन्ताय०
पुष्पदन्तमा० ॥ २० ॥ ॐ इमं मे वरुण श्रुधी
हवमद्या च मृडय ॥ त्वामवस्युराचके ॥ ॐ भू०
वरुणाय० वरुणमा० ॥ २१ ॥ ॐ यमश्विना
नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ॥ इमं
तꣳ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्ष-
यामि ॥ ॐ भू० असुराय० असुरमा० ॥२२॥ ॐ
या ऽइषवो यातुधाननां ये वा वनस्पतीं२॥ रनु ॥
ये वाऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ॐ
भू० शेषाय० शेषमा० ॥ २३ ॥ ॐ एतत्ते रुद्राऽ-
वसन्तेन परो मूजवऽतोऽतीहि ॥ अवततधन्वा पिना-
कावसः कृत्तिवासाऽअहिꣳ सन्नः शिवोऽतीहि ॥
ॐ भू० पापाय० पापमा० ॥ २४ ॥ ॐ द्रापे
ऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ॥ आसां प्रजाना-
मेषां पशूनां माभे र्म्मारोङ्मोचनः किञ्चनाममत् ॥
ॐ भू० रोगाय० रोगमा० ॥ २५ ॥ ॐ अहिरिव
भोगः पर्य्येति बाहुं ज्यायाहेतिं परिबाधमानः ॥

हस्तग्घ्नो व्विश्वा व्वयुनानि व्विद्वान्पुमान्पुमाँ सं परिपातु व्विश्वतः ॥ ॐ भू० अहिर्बुध्न्याय० अहिर्बुध्न्यमा० ॥ २६ ॥ ॐ अवतत्य धनुष्ट्वँ सहस्राक्ष शतेषुधे ॥ निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ॐ भू०मुख्याय० मुख्यमा० ॥ २७ ॥ ॐ इमा रुद्राय तवसे कपर्द्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः ॥ यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे व्विश्वं पुष्टं ग्रामे ऽअस्मिन्ननातुरम् ॥ ॐ भू० भल्लाटाय० भल्लाटमा० ॥२८॥ ॐ व्वयँ सोम व्व्रते तवमनस्तनूषु बिभ्रतः ॥ प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ॐ भू० सोमाय० सोममा० ॥ २९ ॥ ॐ नमोऽस्तु सर्प्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ॥ ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यःसर्प्पेभ्यो नमः ॥ ॐ भू० सर्पाय० सर्पमा० ॥ ३० ॥ ॐ अदितिर्द्यौः० । ॐ भू० अदितये० अदितिमा० ॥ ३१ ॥ ॐ इड ऽएह्यदित ऽएहि काम्या ऽएत ॥ मयि वः कामधरणं भूयात् ॥ ॐ भू० दितये दितिमा० ॥ ३२ ॥ ॐ आपो हिष्ठा ॥ ॐ भू० अद्भ्यो नमः अपः

आवा ॥३३॥ ॐ आ ते व्वंत्सो मनो यमत्परमा-
च्चित्सधस्त्थात् ॥ अग्ने त्वां कामया गिरा ॥
ॐ भू० आपवत्साय० आपवत्समा० ॥ ३४ ॥
ॐ यदद्य सूर ऽउदितेऽनागा मित्रो ऽअर्य्यमा ॥
सुवाति सविता भगः ॥ ॐ भू० अर्य्यम्णे०
अर्य्यमाणमा० ॥ ३५ ॥ ॐ हस्तऽआधाय सविता
बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम् ॥ अग्नेर्ज्ज्योतिर्न्निचाय्य
पृथिव्या ऽअद्ध्याभरदानुष्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥
ॐ भू० सावित्राय० सावित्रमा० ॥ ३६ ॥ ॐ
व्विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ॥ यद्भद्रं
तन्नऽआसुव॥ॐभू०सवित्रे०सवितारमा० ॥ ३७ ॥
ॐ विवस्वन्नादित्य ष ते सोमपीथस्तस्मिन्मत्स्व ॥
श्रदस्मै नरो व्वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती
व्वाममश्नुतः॥ पुमान्पुत्रो जायते व्विन्दते व्वस्वधा
व्विश्वाहारप ऽएधते गृहे ॥ ॐ भू० विवस्वते०
विवस्वन्तमा० ॥ ३८ ॥ ॐ सत्रोधि सूरिर्म्मघवा
व्वसुपते व्वसुदावन् ॥ युयोध्यस्मद्द्वेषाꣳसि व्विश्व-
कर्म्मणे स्वाहा ॥ ॐ भू० विबुधाधिपाय० बिबुधा-

धिपमा० ॥ ३९ ॥ ॐअषाढंस्युत्सुपृतनासु पप्रिछं स्वर्षामप्सां व्वृजनस्य गोपाम् ॥ भरेषुजाछं सुक्षितिः सुश्रवसं जयन्तं त्वामनुमदेम सोम ॥ ॐ भू० जयन्ताय० जयन्तमा० ॥४०॥ ॐ मित्रो न ऽएहि सुमित्रध ऽइन्द्रयोरुमाविशदक्षिण मुशन्नुशन्तछंस्योनः स्योनम् ॥ स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेतेवः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥ ॐ भू० मित्राय० मित्रमा० ॥४१॥ ॐ नाशयित्री बलासस्यार्शस ऽउपचितामसि ॥ अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ॐ भू० राजयक्ष्मणे० राजयक्ष्माणमा० ॥ ४२ ॥ ॐ अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ॥ यथा नो व्वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्वयवसाययात् ॥ ॐ भू० रुद्राय० रुद्रमा० ॥४३॥ ॐ स्योना पृथिवि० ॥ ॐभू० पृथ्वीधराय० पृथ्वीधरमा० ॥४४॥ ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथम पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेन ऽआवः ॥ स बुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ॥ भू० ब्रह्मणे नमः

ब्रह्माणमा० ॥ ४५ ॥ ॐ यं ते देवी निर्ऋतिराब-
बन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् ॥ तं ते व्विष्याम्यायुषो
न मद्ध्यादथै तं पितुमद्धि प्रसूतः ॥ नमो भूत्यै
येदं चकार ॥ ॐ भू० चरक्यै० चरकीमा० ॥ १ ॥
ॐअक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं
द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवेगो-
व्व्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां व्विकृन्तन्तं भिक्ष-
माण ऽउपतिष्ठति दुष्कृताय चरकायचार्य्यं पाप्मने सैल
गम् ॥ॐभू० विदार्य्यै० विदारीमा० ॥२॥ ॐइन्द्रस्य
क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जी-
मूतान्हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ ऽउदर्य्येण
चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं व्वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशि-
भिरुपलान्प्लीह्ना व्वल्मीकान्क्लोमभिग्लौभिर्गुल्मा-
न्हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान्कुक्षिभ्याᳪ समुद्रमुदरेण
व्वैश्वानरं भस्मना ॥ ॐ भू० पूतनायै० पूतनामा०
॥ ३ ॥ ॐ यस्यास्ते घोर ऽआसन् जुहोम्येषां
बन्धानामवसर्ज्जनाय ॥ यां त्वा जनो भूमिरिति
प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद व्विश्वतः ॥ ॐ

पापराक्षस्यै० पापराक्षसीमा० ॥ ४ ॥ ॐ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान ऽउद्यन्तन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्॥ श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू ऽउपस्तुत्यं महि जातं ते ऽअर्व्वन् ॥ ॐ भू० स्कन्दाय० स्कन्दमा० ॥१॥ ॐ यदद्य सूर ऽउदितेनागा मित्रो ऽअर्यमा ॥ सुवाति सविता भगः ॥ ॐ भू० अर्यम्णे० अर्यमणमा० ॥ २ ॥ ॐ हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दायाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ॐ भू० जृम्भकाय० जृम्भकमा० ॥ ३ ॥ ॐ का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः किꣳस्विदासीद् बृहद्वयः॥ का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ॐ भू०

पिलिपिच्छाय० पिलिपिच्छमा० ॥ ४ ॥ ॐ त्रातार
मिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ॥
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा
धात्विन्द्रः ॥ ॐ भू० इन्द्राय० इन्द्रमा० ॥१॥ ॐ
त्वन्नो ऽअग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान्देवस्य हेडो ऽअवया
सिसीष्ठाः ॥ यजिष्ठो व्वह्नितमः शोशुचानो व्विश्वा
द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ ॐ भू० अग्नये०
अग्निमा० ॥ २ ॥ ॐ यमायत्वाङ्गिरस्वते पितृमते
स्वाहा ॥ स्वाहा घर्म्माय स्वाहा घर्म्मः पित्रे ॥ ॐ
भू० यमाय० यममा० ॥ ३ ॥ ॐ असुन्वन्तमय-
जमानमिच्छस्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ॥ अन्य-
मस्मदिच्छ सा त ऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्य-
मस्तु ॥ ॐ भू० निर्ऋतये० निर्ऋतिमा० ॥४॥
ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते
यजमानो हविर्भिः ॥ अहेडमानो व्वरुणे ह बोध्युरुशꣳ
समान ऽआयुः प्रमोषीः ॥ ॐ भू० वरुणाय०
वरुणमा० ॥५॥ ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ
सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् ॥ व्वायो ऽअस्मिन्त्सवने

मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ॐ भू० वायवे० वायुमा० ॥६॥ ॐ व्वयꣳ सोम व्व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ॥ प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ॐ भू० सोमाय० सोममा० ॥७॥ ॐ तमीशानम्० ॥ ॐ भू० ईशानाय० ईशानमा० ॥८॥ ॐ अस्मे रुद्रा मेहना पर्व्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ॥ यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्र ऽइन्द्रज्ज्येष्ठा ऽअस्माँ२ ॥ ऽअवन्तु देवाः ॥ ॐ भू० ब्रह्मणे ब्रह्माणमा० ॥९॥ ॐ स्योना पृथिवि० ॥ ॐ भू० अनन्ताय० अनन्तमा० ॥१०॥

अथाग्न्युत्तारणमन्त्राः—

देशकालौ संकीर्त्य० अमुक गोत्र अमुक शर्माऽहं अस्यां वास्तुमूर्त्तौ अवघातादिदोषपरिहारार्थं अग्न्युत्तारण देवतासान्निध्यार्थं प्राणप्रतिष्ठां च करिष्ये। सुवर्ण प्रतिमां पात्रे निधाय घृतेनाभ्यज्य तदुपरि जलधारां पातयेत् ॥ तत्र अग्न्युत्तारण-मन्त्राः—ॐ समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परि व्ययामसि ॥ पावको ऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ १ ॥

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि ॥ पावको ऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २ ॥ उपज्ज्मन्नुप वेतसे-ऽवतर नदीष्ष्वा ॥ अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णꣳ शिवं कृधि ॥ ३ ॥ अपामिदं न्ययनꣳ समुद्रस्य निवेशनम् ॥ अन्याँस्ते ऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ४ ॥ अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ॥ आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ ५ ॥ स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ२॥ ऽइहावह ॥ उप यज्ञꣳ हविश्च नः ॥ ६ ॥ पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच ऽउषसो न भानुना ॥ तूर्वं न्न यामन्ने-तशस्य नू रण ऽआ यो घृणे न ततृषाणो ऽअजरः ॥७॥ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽअस्त्वर्चिषे ॥ अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ८ ॥ नृषदे व्वेडप्सुषदे व्वेड् बर्हिषदे व्वेड् व्वनसदे व्वेट् स्वर्व्विदे व्वेट् ॥ ९ ॥ ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाꣳ संवत्सरीणमुप भागमासते ॥ अहुतादो हविषो यज्ञे ऽअस्मि-

न्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य॥१०॥ ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुर ऽएतारो ऽअस्य ॥ येभ्यो न ऽऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्या ऽअधि स्नुषु ॥ ११ ॥ प्राणदा ऽअपानदा व्यानदा व्वर्चोदा व्वरिवोदाः ॥ अन्याँस्ते ऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ १२ ॥

अथ वास्तुप्राणप्रतिष्ठामन्त्राः—

ॐ आँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ क्षँ हँ सः सोऽहं अस्य वास्तुमूर्तेः प्राणा इह प्राणाः ॥ ॐ आँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ क्षँ हँ सः सोऽहं अस्य वास्तुमूर्तेः जीव इह स्थितः ॥ ॐ आँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ क्षँ हँ सः सोऽहं अस्य वास्तुमूर्तेः वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्र-जिह्वाघ्राणपाणिपादपायूपस्थानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥ ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्त्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु ॥ विश्वेदेवा सऽइहमादयन्तामों २॥ प्रतिष्ठ ॥ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च । अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ॥

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो ऽअनमी वो भवानः ॥ यत्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
वास्पोष्पतये नमः इति पंचोपचारैः षोडशोपचारैः सम्पूज्य ॥

प्रार्थना—ॐ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्ति श्रद्धा-विवर्जितम् यत्पूजितं मयादेव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ १ ॥

नमस्ते वास्तुदेवेश सर्वदोष हरो भव। शान्तिं कुरु सुखं देहि सर्वान्कामान्प्रयच्छमे ॥२॥ इत्युक्त्वा वास्तुं पुरुषाय नारिकेलं सस्वर्णं च समर्घ्यं प्रणमेत् । अनन्तर सपत्नीक यजमान 'रक्षोघ्न सूक्त' मन्त्रों से तथा पवमान सूक्तमन्त्रो से जल, दुग्ध दोनो को मिलाकर धारा देवे और त्रिसूत्री द्वारा (वस्त्र वा) अग्नि कोण से प्रारम्भ कर मण्डप का वेष्टनं करें।

१—शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः । सूर्यः सत्यो भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च ॥ पूषाः च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ । गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा ॥ दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः । असुरः शेषपापौ च रोगाहिर्मुख्य एव च ॥ भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्चादितिस्त था । बहिर्द्वात्रिंशदेते

तु तदन्तश्चतुरः पृथुः ॥ आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च। मध्ये नव पदो ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगाः। अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः। मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ॥ अष्टमश्चापवनन्ताश्च परितो ब्रह्मणः स्मृता ॥

२—वास्तु सहितो विप्रैर्मण्डपं वेष्टयेत शुभम्। हेमाद्रौ। मण्डप प्रवेशानन्तरं मण्डपवेष्टनमुक्तम्। प्रयोग चिन्तामणौ ॥

अथ रक्षोघ्नसूक्तमन्त्राः

ॐ कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजे वामवाँ२॥ऽइभेन ॥ तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोस्तासि विद्ध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १ ॥ तव भ्रमास ऽआशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ॥ तपू(ँ)ष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्व गुल्काः ॥ २ ॥ प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो ऽअस्या ऽअदब्धः ॥ यो नो दूरे ऽअघशꣳस सो यो ऽअन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ ३ ॥ उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ २॥ ऽओषतात्तिग्महेते ॥ यो नो ऽअरातिꣳ समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४॥ ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्या-न्यग्ने ॥ अव स्थिरा तनुहि यातुजूनाञ्जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥ अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥५॥

अथ पवमानसूक्तमन्त्राः

ओं पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा ॥ पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ १ ॥ अग्न ऽआयूꣳषि पवस ऽआसुवोर्ज्जमिषं च नः ॥ आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ २ ॥ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ॥ पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ ३ ॥ पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ॥ अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२॥ रनु ॥ ४ ॥ यत्ते पवित्रमर्च्चिष्यग्ने व्विततमन्तरा ॥ ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ५ ॥ पवमानः सो ऽअद्य नः पवित्रेण व्विचर्षणिः ॥ यः पोता स पुनातु मा ॥ ६ ॥ उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ॥ मां पुनीहि व्विश्वतः ॥ ७ ॥ व्वैश्वदेवी पुनती देव्व्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्न्वो व्वीतपृष्ठाः ॥ तया मदन्तः सधमादेषु व्वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ८ ॥

इति मण्डपाङ्गवास्तु पूजनम् ।

अथ मण्डपपूजनम्

देशकालौ संकीर्त्य—'अमुक गोत्रः अमुकशर्माऽहं (सपत्नीकोऽहं) ग्रहयज्ञाङ्गभूतं मण्डपदेवानां स्थापनं पूजनं च करिष्ये। इति संकल्प्य। ततः रक्तवर्णं कर्तामध्यवेदीशानस्तम्भे' ॐ ब्रह्म यज्ञानम्प्रथमम्पु रस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन ऽआवः। सबुध्न्याऽ उपमा ऽअस्यविष्ठाः सतश्चयोनिमसतश्च विवः" 'ॐ भू० ब्रह्मन्निहागच्छ इह तिष्ठ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि। ततो गन्धादिभिः सम्पूज्य नमस्कारः। अनेन कृतार्चनेन मध्यवेदीशानकोण-स्थित स्तम्भाधिष्ठातृ देवताः प्रीयन्ताम्।

ततो मध्यवेद्याग्नेयकोणस्तम्भे कृष्णवर्णं विष्णुं पूजयेत् "ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे स्वाहा" विष्णो इहागच्छ इह तिष्ठ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि। गन्धादिभिः सम्पूज्य नमस्कारः।

अनेन कृतार्चनेन मध्यवेद्याग्नेयकोणस्थित स्तम्भाधिष्ठातृ देवताः प्रीयन्ताम्।

नैऋर्त्यकोणे स्तम्भं श्वेतं शङ्करं पूजयेत् 'ॐ नमस्ते रुद्रमन्यव ऽउतोत इषवे नमः ॥ बाहुभ्या-मुतते नमः ॥ भू० शम्भो इहागच्छेह तिष्ठ सम्भवे नमः शम्भुं आवाहयामि' गन्धादिभिः सम्पूज्य नमस्कारः । अनेन कृतार्चनेन स्तम्भाधिष्ठातृ देवताः प्रीयन्ताम् । वायव्यकोणे पीतस्तम्भे इन्द्रं पूजयेत् 'ॐ त्राता रमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ॥ ह्वयामि शक्रम्पुरु हूतमिन्द्रꣳ स्वस्तिनोमघवा धात्विन्द्रः भू० इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ इन्द्राय नमः इन्द्रमा० गन्धाक्षत पुष्पाणि सम्पूज्य नमस्कारः। अनेन कृतार्चनेन इन्द्रः प्रीयताम् । ततो मण्डपात् बहिः ईशानकाणे गत्त्वा ईशानादारभ्य द्वादशस्तम्भान् पूजयेत् । ईशाने रक्तस्तम्भे सूर्यम्– ॐ आकृष्णेन रजसा व्वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ सूर्येहागच्छेहतिष्ठ सूर्याय नमः सूर्यमा० सम्पूज्य नमस्कारः । अनेन कृतार्चनेन सूर्यः प्रीयताम् । ईशानपूर्वयोर्मध्ये श्वेतस्तम्भे

गणेशम्—ॐ गणानान्त्वा गणपतिᳪ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिᳪ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिᳪ हवामहे व्वसो मम ॥ आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्' गणपते इहागच्छेह-तिष्ठ गणपतये नमः गणपतिमा० सम्पूज्य च नमस्कारः । अनेन कृतार्चनेन गणपतिः प्रीयताम् ।

पूर्वाग्नेययोर्मध्ये कृष्णवर्णस्तम्भे यमम्—ॐ यमा यत्वा मखायत्वा सूर्य्यस्य त्वा तपसे । देव-स्त्वा सविता मद्धवानक्तु पृथिव्याः सᳪ स्पृशस्पाहि । अर्चिरसि शोचिरसि तपोसि ॥ यमेहागच्छेह तिष्ठ यमाय नमः यममा० सम्पूज्य नमस्कारः अनेन कृतार्चनेन यमः प्रीयताम् । आग्नेयकोणे कृष्णवर्ण-स्तम्भे नागराजम्—ॐ नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः ॥ ॐ भू० नागराजेहागच्छेह तिष्ठ 'नागराजाय० नागराजमा० सम्पूज्य नमस्कारः । अनेन कृतार्चनेन नागराजः प्रीयताम् । अग्निदक्षिणयोर्मध्ये श्वेतस्तम्भे स्कन्दम्—ॐ यद-

स्कन्दः प्रथमञ्जायमान ऽउद्यन्त्समुद्रा दुतवा पुरीषात्॥ श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहु ऽउपस्तुत्यम्महि जातन्ते ऽअर्वन्॥ भू० स्कन्देहागच्छेह तिष्ठ, स्कन्दाय नमः स्कन्दमा० ॥ सम्पूज्य नमस्कारः, अनेन कृतार्चनेन स्कन्दः प्रीयताम् ।

दक्षिण नैर्ऋत्ययोर्मध्ये धूम्रस्तम्भे (काला) वायुम्— 'ॐ व्वायो ये ते सहस्त्रिणो रथासस्तेभिरागहि ॥ नियुत्वान्सोमपीतये ॥ भू० वायो इहागच्छ इह तिष्ठ, वायवे नमः, वायुमा० सम्पूज्य नमस्कारः । अनेन कृताचनेन वायुः प्रीयताम् ।

नैर्ऋत्ये पीतस्तम्भे सोमम्—ॐ आप्यायस्व-समेतुते व्विश्वत ÷ सोमव्वृष्ण्यम् ॥ भवाव्वाजस्य सङ्गथे॥ ॐ भू० सोमेहागच्छेहतिष्ठ सोमायनमः सोममा० सम्पूज्य नमस्कारः । अनेनकृतार्चनेन सोमः प्रीयताम् ।

नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये श्वेतस्तम्भे वरुणम्-' ॐ इमम्मे वरुण श्रु धीहवमद्याचमृडय। त्वामवस्यु राचके॥ भू० वरुणेहागच्छेह तिष्ठ, वरुणायनमः, वरुणमा०

सम्पूज्य नमस्कारः। अनेन कृतार्चनेन वरुणः प्रीयताम्।

पश्चिम वायव्यान्तराले श्वेतस्तम्भे अष्टवसून्-ॐ 'व्वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा दित्येभ्यत्व सञ्जानाथा-न्द्यावा पृथिवो मित्रा वरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्॥ व्व्यन्तु व्वयोक्तृ रिहाणामरुताम्पृषती गच्छ व्व-शापृश्निभूं त्वा दिवङ्गच्छ ततोनो व्वृष्टिमावह॥ चक्षुष्पाऽअग्नेसि चक्षुर्मे पाहि॥ भू० वसव इहा-गच्छतेह तिष्ठत वसुभ्योनमः. वसूनावा० सम्पूज्य नमस्कारः, अनेन कृतार्चनेन अष्ट वसवः प्रीयन्ताम्।

वायव्ये पीतस्तम्भे धनदम्—ॐ सोमोधेनुं सोमोऽअर्व्वन्तमाशुं सोमो व्वीरङ्कर्मण्यन्ददाति। सादन्यं व्विदत्थ्यं सभेयम्पितृ श्रवणं य्योददाश-दस्मै॥ भू० धनदेहागच्छेह तिष्ठ, धनदायनमः, धनद० सम्पूज्य नमस्कारः। अनेन कृतार्चनेन धनद प्रीयताम्।

उत्तरवायव्योन्तराले पीतस्तम्भे गुरुं--ॐ बृह-स्पतेऽअतियदर्य्योऽअर्हा द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु॥

यद्दीदयच्छवसा ऽऋतप्रजा ततदस्मासु द्रविणंधेहि चित्रम् ॥ भू० बृहस्पते इहागच्छ इह तिष्ठ ॥ बृहस्पतये० बृहस्पतिमा० सम्पूज्य नमस्कारः। अनेन कृतार्चनेन बृहस्पतिः प्रीयताम्।

उत्तरेशानयोर्मध्ये रक्तस्तम्भे विश्वकर्माणम्--
ॐ विश्वकर्मन्न्हविषा व्वर्धनेनत्राता रामेन्द्रमकृणोरवद्ध्यम् ॥ तस्मै व्विशः समनमन्तपूर्वीरयमुग्रो व्विहव्यो यथासत् ॥ भू० विश्वकर्मन्निहागच्छेह तिष्ठ विश्वकर्मणे नमः, विश्वकर्माणमा०। सम्पूज्य नमस्कारः अनेन कृतार्चनेन विश्वकर्मणः प्रीयताम्।

ॐ त्वन्नो ऽअग्ने तव देवपायुभिर्म्मघोनो रक्ष तन्वश्च व्वन्द्य ॥ त्राता तोकस्य तनये गवामस्य निमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्व्रते ॥ ३ ॥ ॐ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे देवाँ२ ॥ ऽआसाद यादिह ॥ ४ ॥ ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ॥ स्वाहा धर्माय स्वाहा। घर्म्मं पित्रे ॥५॥ ॐ असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ॥ अन्न्यमस्मदिच्छ सा त ऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्य-

मस्तु ॥ ६ ॥ ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्त-
दाशास्ते यजमानो हविर्ब्भिः ॥ अहेडमानो व्वरुणे
ह वोद्ध्युरुशꣳ स मा न ऽआयुः प्रमोषीः ॥ ७ ॥
ॐ उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्मदवाधमं व्वि मध्यमꣳ
श्रथाय ॥ अथा व्वयमादित्य व्रते तवानागसो
ऽअदितये स्याम ॥ ८ ॥ ॐ आ नो नियुद्भिः
शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् ॥
व्वायो ऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः
सदानः ॥९॥ ॐ व्वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभि-
रागहि ॥ नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ १० ॥ ॐ शन्नो
देवीरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये ॥ शँय्योरभि-
स्रवन्तु नः ॥ ॐ व्वयꣳ सोम व्व्रते तव मनस्तनू
षु बिभ्रतः ॥ प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ॐ आप्या-
यस्व समेतु ते व्विश्वतः सोम व्वृष्ण्यम् ॥ भवा
व्वाजस्य सङ्गथे ॥ ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं
धियञ्जिन्न्वमवसे हूमहे व्वयम् ॥ पूषा नो यथा
व्वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ॐ
तमीशानम्० ॥ ॐ अस्मे रुद्रा मेहना पर्व्वतासो

व्वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ॥ यः शᳪसते स्तुवते धायि पज्र ऽइन्द्रज्ज्येष्ठा ऽअस्म्माँ२ ॥ ऽअवन्तु देवाः ॥ ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेन ऽआवः ॥ स बुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ॥ ॐ स्योना पृथिवि नो भवान्नृक्षरा निवेशनि ॥ यच्छानः शर्म्म सप्रथाः ॥

ॐ नमोऽस्तु सर्प्पेभ्यो ये के च पृथिवी-मनु ॥ ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः ॥ ॐ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्च्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्न्यः शूर ऽइषव्व्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्व्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धि-र्य्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य व्वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्ज्जन्यो व्वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्च्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यः० ॐ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां व्वर्षमिषवः ॥ तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो-

दीचीर्द्दशोदूर्ध्वाः ॥ तेभ्यो नमो ऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषा-ञ्जम्भे दद्ध्मः ॥ ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ॥ येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः ॥ एतावत्कर्म मण्डपान्तः स्थित्वा कर्तव्यमिति ॥ इति मण्डप पूजनम् ॥

अथ प्रधानवेद्यां सर्वतोभद्र पूजनम्

अर्चनविधिः । तत्र नियत मानसो भूत्वा मध्य-वेदेः पश्चात् उपविश्य ॐ केशवायनमः १ ॐनारा-यणाय नमः २ ॐ माधवाय नमः ३ इति त्रिरा-चम्य मध्यमाअनामिकाभ्यां मुखम्, तर्जन्यङ्गुष्ठेन नासिकाद्वयम्, मध्यमाङ्गुष्ठेन नेत्रद्वयम्, अनामिका-ङ्गुष्ठेन कर्णौ, कनिष्ठाङ्गुष्ठेन नाभिम्, दक्षिण हस्तेन हृदयम्, अङ्गुलिभिः शिरोदक्षिणवामौ बाहु च स्पृशेत् इत्येकं आचमनम् । एवमेव ' केशवायनमः" इत्यारभ्य

१—खण्डेन्दुस्त्रिपदः श्वेतः पञ्चभिः कृष्णशृङ्खला, नीलैकादशवल्लीतु भद्रं रक्तं पदैर्नव ॥ १ ॥ चतुर्विशति सितावापी परिधिः पीतविं-शतिः ॥ २ ॥ मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः रक्तं पद्मं सकर्णिकम् । परिध्या वेष्टितं पद्मं वाह्ये सत्त्वं रजस्तमः । तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्यांश्च सुरेश्वरान् ॥ ३ ॥ इति सर्वतो भद्रमण्डल कारिका ॥

पुनः कुर्यात्। एवं कृते द्विः स्मार्तानां भवति।
ततः प्राणायामं कुर्यात् तद्यथा--ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः
ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐतत्सवितुर्व०
ॐ आपोज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्' इति
मन्त्रं नव कृत्वः पठेत्। तत्र अङ्गुष्ठेन दक्षिणनासां स्पृ-
ष्ट्वा मौनी नेत्रे संमील्य नाभौ स्थितं चतुर्भुजं विष्णुं
ध्यायन् वाम नासिकायां शनैः शनैः श्वासं कर्षन्
वास्त्रयं मन्त्रं पठन् पूरकप्राणायामं कुर्यात्। ततो-
ऽङ्गुष्ठेन दक्षिणनासां अनामिका कनिष्ठाभ्यां वाम-
नासां निपीड्य श्वासं नियम्य मौनी नेत्रे निमील्य
हृदयस्थं कमलासनं ब्रह्माणं ध्यायन् त्रिवारं मन्त्रं
पठन् कुम्भकं कुर्यात्। ततो अङ्गुष्ठं अपसार्य अना-
मिकाकनिष्ठाभ्यां वामनासां स्पृशन् श्वासं शनैर्विमु-
ञ्चन् मौनी अक्षिणी निमील्य ललाटे स्थितं सङ्करं
ध्यायन् मन्त्रं त्रिवारं पठन् रेचकं कुर्यात्। तत
"अपवित्र" इति मन्त्रेण आत्मानं पूजासामग्रीं च
संप्रोक्ष्य शान्ति पाठं कृत्वा गणेशं च सम्पूज्य
'पृथ्वीत्वया' इति मन्त्रं पठित्वा ॐ अनन्तासनाय

नमः १ ॐ विमलासनाम नमः २ ॐ परमासुखा-सनाय नमः ३ इति आसनं सम्पूज्य "तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्त दहनोप । भैरवाय नमस्तुभ्य अनुज्ञां दातुमर्हसि" इति भैरवाज्ञां गृहीत्वा" ॐ वे भूतानाम् इति छोटिकया दिग्बन्धनं कृत्वा "ॐ भैर-वायनमः इति वामपादेन भूमिंत्रिः सन्ताड्य 'ॐ ऊर्ध्वकेशि विरूपाक्षिः" इति शिखां बध्वा सर्वतो-भद्रपीठे देवानां आवाहयेत् तद्यथा संकल्पं कुर्यात्—देशकालौ स्मृत्वा अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्माऽहं (सपत्नोकोऽहम्) 'अस्मिन् अमुकयाग कर्मणि-महावेद्यां सर्वतोभद्र मण्डले (अमुक मण्डले) ब्रह्मादि-देवानां आवाहयेत् तद्यथा—

ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेन ऽआवः ॥ सबुध्न्याऽउपमा अस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च योनिमसतश्च व्विवः मध्ये--ॐ भू० ब्रह्मणे० ब्रह्माणमा० ॥१॥ ॐ आप्यायस्व समेतु ते व्विश्वतः सोम व्वृष्ण्यम् ॥ भवा व्वाजस्य सङ्गथे" उत्तरेवाप्याम् ॐ भू० सोमाय० सोममा० ॥२॥ उत्तरे

वाय्याम् ॐ तमीशानं जगतस्तस्थषस्पति धियञ्जि-न्न्वमवसे हूमहे व्वयम् ॥ पूषा नो यथा व्वेद सामस-द्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये' ॥ ईशान्यां खण्डेन्दौ ॐ भू० ईशानाय० ईशानमा० ॥३॥ ॐ त्रातारमिन्द्रमवितार-मिन्द्रᳬ हवेहवे सुहवᳬ शूरमिन्द्रम् ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रᳬं स्वस्ति नो मघवा धात्वि न्द्र''÷ पूर्वेवाप्याम् ॐ भू० इन्द्रायनमः इन्द्रमा०॥४॥ ॐत्वन्नो ऽअग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान्देवस्य हेडो ऽअव-यासिसीष्टाः ॥ यजिष्ठो व्वह्नितमः शोशुचानो व्विश्वा द्वेषाᳬंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्' आग्नेय्यां खन्डे-न्दौ ॐभू० अग्नये० अग्निमा० ॥५॥ ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ॥ स्वाहा घर्म्माय स्वाहा घर्म्मः पित्रे" दक्षिणेवाप्याम् ॐभू० यमाय० यममा० ॥ ६ ॥ ॐ असन्न्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्याम-न्न्विहि तस्करस्य ॥ अन्न्यमस्मदिच्छ सा त ऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ नैर्ऋत्यां खण्डेन्दौ ''ॐ भू० निर्ऋतये० निर्ऋतिमा० ॥७॥ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हवि-

भिः ॥ अहेडमानो व्वरुणे ह वोध्युरुशᳫंस मा न ऽआयुः प्रमोषीः ॥' पश्चिमे वारुयाम् ॥ॐ भू० वरुणाय० वरुणमा० ॥८॥ ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिर- ध्वरᳫं सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् ॥ व्वायो ऽअस्मि- न्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥' वायव्यां स्कन्देन्द्वौ ॐ भू० वायवे० वायुमा० ॥९॥ ॐ व्वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वाऽऽदित्येभ्यस्त्वा सञ्जानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्याव- ताम् ॥व्यन्तु व्वयोक्तᳫं रिहाणा मरुतां पृषतीर्ग्गच्छ व्वशा पृश्निर्भूत्वा दिवङ्गच्छ ततो नो व्वृष्टिमा- वह ॥ चक्षुष्पा ऽअग्नेऽसि चक्षुर्म्मे पाहि"ॐ वायु- सोम मध्ये भद्रे भू० अष्टवसुभ्यो० भू० अष्टवसूना० ॥१०॥ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव ऽउतो त ऽइषवे नमः॥ बाहुभ्यामुत ते नमः"॥ सोमेशानयोर्मध्ये ॐ एका- दशरुद्रेभ्यो० एकादशरुद्राना० ॥११॥ ॐ यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः॥ आ वोऽर्वाची सुमतिर्व्ववृत्त्यादᳫंहोश्चिद्या व्वरिवो- वित्तरासत्" ईशानपूर्वयोर्मध्ये ॐ भू० द्वादशादित्ये-

भ्यो० द्वादशादित्याना० ॥ १२ ॥ ॐ यावाङ्कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती ॥ तया यज्ञं मिमिक्षतम्" इन्द्राग्न्योर्मध्ये ॐ भू० अश्विभ्यां० अश्विनौ० ।१३। ॐ विश्वेदेवास ऽआगत शृणुता म ऽइमᳪ हवम्॥ एदं बर्हिर्निषीदत ॥ उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्य- स्त्वा देवेभ्य ऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य"÷ अग्नियम मध्ये भद्रे ॐ भू० सपैतृकविश्वेभ्यो देवेभ्यो० सपैतृकविश्वान् देवाना० ॥ १४ ॥ ॐ अभित्यं देवᳪ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्च्चामि सत्यसवᳪ रत्नधामभि प्रियं मति कविम् ॥ ऊर्द्ध्वा यस्यामतिर्भा ऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमि- मीत सुक्रतुः कृपा स्वः प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽ नुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि" यमऋतिमध्ये भद्रे ॐ भू० सप्तयक्षेभ्यो० सप्तयक्षाना० ॥ १५ ॥ ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ॥ येऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नम"÷निऋर्ति- तिवरुणयोर्मध्ये भद्रे ॐ भू० अष्टकुलनागेभ्यो० अष्टकुलनागाना० ॥ १६ ॥ ॐ ऋताषाड् ऋत-

धामाग्निर्गन्धर्व्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ॥
स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्
ताभ्यः स्वाहा' वरुण वायु मध्येभद्रे ॐ भू० गन्धर्वाप्स-
रोभ्यो० गन्धर्वाप्सरसः आ० ॥१७॥ ॐ यदक्रन्दः
प्रथमं जायमान ऽउद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ॥
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू ऽउपस्तुत्यं महि जातं
ते ऽअर्व्वन्" ब्रह्मसोममध्ये वाय्याम् ॐ भू० स्कन्दाय०
स्कन्दमा० ॥१८॥ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो
घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ॥ सङ्क्रन्दनो निमिष
ऽएकवीरः शतꣳ सेना ऽअजयत्साकमिन्द्रः" स्कन्दा
दुत्तरे ॐ भू० वृषभाय० वृषभमा० ॥ १९ ॥ ॐ
कार्षिरसि समुद्रस्य त्वाक्षित्या ऽउन्नयामि ॥ समापो
ऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः' वृषभोत्तरे—ॐ भू०
शूलाय० शूलमा० ॥२०॥ ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य
त्वा क्षित्या ऽउन्नयामि ॥ समापो ऽअद्भिरग्मत समो-
षधोभिरोषधीः" शूलादुत्तरे—ॐ भू० महाकालाय०
महाकालमा० ॥२१॥ ॐ शुक्रज्ज्योतिश्च चित्रज्ज्यो-
तिश्च सत्यज्ज्योतिश्च ज्ज्योतिष्माँश्च ॥ शुक्रश्च ऽऋ-

पाश्चात्यश्चहा॰" ब्रह्मेशानयोर्मध्ये शृङ्खलायाम्—ॐ भू॰
दक्षादिसप्तगणेभ्यो॰ दक्षादिसप्तगणाना॰ ॥२२॥
ॐअम्बे ऽअम्बिके ऽम्बालिके नमा नयति कश्चन ॥
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्" ब्रह्मेन्द्र-
मध्ये वाप्यां लिंगेवा—ॐभू॰ दुर्गायै॰ दुर्गामा॰॥२३॥
ॐ इदं व्विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥ समू-
ढमस्य पाᳫं सुरे स्वाहा' दुर्गापूर्वे—ॐ भ॰ विष्णवे॰
विष्णुमा॰ ॥ २४ ॥ ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः
स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः
प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः अक्षन्पित-
तरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्ध-
ध्वम्" ब्रह्माग्नयोर्मध्ये शृङ्खलायाम् ॐ भू॰ स्वधायै॰
स्वधामा॰ ॥२५॥ ॐ परं मृत्यो ऽअनु परेहि पन्थां
यस्ते ऽअन्य ऽइतरो देवयानात् ॥ चक्षुष्मते शृ-
ण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳫं रीरिषो मोत
व्वीरान्' ब्रह्मयममध्ये वायव्यां लिंगेवा — ॐ भू॰
मृत्युरोगेभ्यो॰ मृत्युरोगाना॰ ॥२६॥ ॐ गणाना-
न्त्वा॰' ब्रह्मानिर्ऋति शृङ्खलायाम्—ॐ भू॰ गणप-

तये० गणपतिमा० ॥ ॥ २७ ॥ ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुवस्तान ऽऊर्ज्जे दधातन ॥ महे रणाय चक्षसे" ब्रह्मवरुणयोर्मध्ये वाप्यां लिगे वा ॐ भू० अद्भ्यो० अपः आ० ॥२८॥ ॐ मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो व्विमहसः ॥ स सुगोपातमो जन"÷ ब्रह्मवायु-मध्ये शृङ्खलायां—ॐ भू० मरुद्भयो० मरुतः आ० ॥२९॥ ॐस्योना पृथिवो नो भवा नृक्षरानिवेशनी॥ यच्छा नः शर्म्म सप्रथा' ब्रह्मणः पाद मूले-ॐ भू० पृथिव्यै० पृथिवीमा० ॥ ३० ॥ ॐ इमम्मे व्वरुण श्रुधीहवमद्या च मृडय ॥ त्वामवस्युरा चके"

ब्राह्मणः पादमूले पृथिव्या उत्तरे—ॐ भू० गङ्गादिनदीभ्यो० गङ्गादिनदीः आ० ॥ ३१ ॥ ॐ समुद्रोऽसि नभस्वानाद्र्द्रदानुः शम्भूर्म्मयोभूरभि माव्वाहि स्वाहा । मारुतोसि मरुताङ्गणः शम्भूर्म्मयो-भूरभि मा व्वाहि स्वाहा ॥ अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छ-म्भूर्म्मयोरभि मा व्वाहि स्वाहा" ब्राह्मणः पादमूले गङ्गोत्तरे—ॐ भू० सप्तसागरेभ्यो० सप्तसागराना० ॥ ३२ ॥ ॐ प्र पर्व्वतस्य व्वृषभस्य पृष्ठान्ना

वश्चरान्ति श्वासिचऽइयानाः ।। ताऽआवव्रृत्रन्नधरा-गुदक्ता ऽअहिम्बुध्न्यमनु रीयमाणाः ।। व्विष्णोर्व्वि-क्रमणमसि व्विष्णोर्व्विक्रान्तमसि व्विष्णोः क्रान्त-मसि" कर्णिकापरिधौ—ॐ भू० मेरवे० मेरुमा० ।। ३३ ।। अथ सोमादिक्रमेण सत्त्वबाह्यपरिधौ—ॐगणानान्त्वा०।। ॐभू० गदायै० गदामा० ।।३४।। ईशाने—ॐ त्रिꣳ शद्धाम व्विराजति व्वाक्पतङ्गाय धीयते ।। प्रतिवस्तोरह द्युभिः" पूर्वे—ॐ भू० त्रिशूलाय० त्रिशूलमा० ।। ३५ ।। ॐ महाँ२ ।। ऽइन्द्रो व्वज्रहस्तः षोडशी शर्म्म यच्छतु ।। हन्तु पाप्मानं योऽस्म्मान् द्वेष्टि ।। उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वै षते योनिर्म्महेन्द्राय त्वा ।। आग्नेये—ॐ भू० वज्राय० वज्रमा० ।। ३६ ।। ॐ व्वसु च मे व्वसतिश्च मे कर्म्म च मे शक्तिश्च मे ऽर्थश्च म ऽएमश्च म ऽइत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।। ॐ भू० शक्तये० शक्तिमा० ।।३७।। दक्षिणे ॐ इड एह्यदित ऽएहि काम्या ऽएत ।। मयि वः कामधरणं भूयात्" ।। ॐ भू० दण्डाय०

दण्डमा० ॥ ३८ ॥ नैर्ऋत्ये—ॐखड्गो व्वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्द्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिᳫं हो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै व्विश्वेषां देवाना पृषतः ॥ ॐभू० खड्गाय० खड्गमा० ॥ ३९ ॥ पश्चिमे—ॐ उदुत्तमं व्वरुण-पाशमस्मदवाधमं व्वि मध्यमᳫं श्रथाय ॥ अथा व्वय मादित्य व्व्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम ॥ ॐ भू० पाशाय० पाशमा० ॥ ४० ॥ वायुकोणे—ॐ अᳫं शुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधि-पतिश्च मे उपाᳫंशुश्च मेऽन्तर्य्यामश्च मे ऐन्द्र-वायवश्च मे मैत्रावरुणश्च मे ऽआश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ॐ भू० अङ्कुशाय० अङ्कुशमा० ॥ ४१ ॥ तद्बाह्ये रजपरिधौ-सोमादिक्रमेण-उत्तरे—ॐआयंगौः पृश्निरक्र मीदसदन्न्मातरपुरः ॥ पितर-ञ्चप्रयन्त्स्वः॥ ॐभू० गौतमाय० गौतममा० ॥४२॥ ईशान्याम्—ॐ अयन्दक्षिणा व्विश्वकर्म्मा तस्य मनो व्वैश्वकर्म्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी

त्रिष्टुभः स्वारꣳस्वारादन्तर्यामोन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद्भरद्वाज ऽऋषिः प्रजापति-गृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥
ॐ भू० भरद्वाजाय० भरद्वाजमा० ॥ ४३ ॥
पूर्वे—ॐ इदमुत्तरात्स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऽऐडमैडान्मन्थी मन्थिन ऽएकविꣳशाद् वैराज विश्वामित्र ऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥
ॐ भू० विश्वामित्राय० विश्वामित्रमा० ॥ ४४ ॥
आग्नेय्याम्—ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ॥ यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो ऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥ ॐ भू० कश्यपाय कश्यपमा० ॥४५॥
दक्षिणे—ॐ अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वै-श्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऽऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्त-दशाद् वैरूपं जमदग्निरृषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ॐभू० जमदग्नये० जमदग्निमा० ॥४६॥ नैर्ऋत्याम्—ॐअयं पुरो भुव-

स्तस्य प्राणो भौवायनो व्वसन्तः प्राणाय नो गायत्री व्वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाᳬशुरुपाᳬशोस्त्रिवृत्त्रिवृतो रथन्तरं व्वसिष्ठ ऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ॐ भू० वसिष्ठाय० वसिष्ठमा०॥४७॥ पश्चिमे ॐ अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ॥ अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥ ॐ भू० अत्रये० अत्रिमा० ॥४८॥ वायव्याम् ॐ तं पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ॥ नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे ऽअधिरोचने दिवः ॥ ॐ भू० अरुन्धत्यै० अरुन्धतीमा०॥४९॥ तद्वाह्ये—ॐ तमः परिधौ पूर्वादिक्रमेण पूर्वे-अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या ऽउष्णीषः ॥ पूषासि घर्म्माय दीष्व ॥ ॐ भू० ऐन्द्र्यै० ऐन्द्रीमा ॥५०॥ आग्नेय्याम् ॐ अम्बे ऽअम्बिके० ॥ ॐ भू० कौमार्य्यै० कौमारीमा० ॥५१॥ दक्षिणे ॐ इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ॥ उप ब्रह्माणि व्वाग्घतः ॥ ॐ भू० ब्राह्म्यै० ब्राह्मीमा०॥५२॥ नैरृत्य-

त्याम्– ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।। पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ।। ॐ भू० वाराह्यै० वाराहीमा० ।।५३।। पश्चिमे ॐ अम्बेऽअम्बिके०।। ॐ भू० चामुण्डायै० चामुण्डामा० ।।५४।। वायव्ये— ॐआप्यायस्व समेतु ते व्विश्वतः सोम व्वृष्ण्यम्।। भवा व्वाजस्य सङ्गथे ।।ॐभू० वैष्णव्यै० वैष्णवीमा० ।।५५।। उत्तरे ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ।। ॐ भू० माहेश्वर्यै० माहेश्वरीमा ।।५६।। ईशान्याम्–ॐ समख्ये देव्या धिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा ।। मा म ऽआयुः प्रमोषीर्म्मो ऽअहं तव व्वीरं व्विदेय तव देवि सन्दृशि ।। ॐभू० वैनायक्यै० वैनायकीमा० ।।५७।। इति देवान् आवाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत् ।। तद्यथा–

श्री सर्वतो भद्रकमण्डलेस्मिन् ब्रह्मादिदेवान्निजबोधरुपान् । सुरप्रधानान्निगम प्रसिद्धान्ध्यायेऽधुनाऽहं परमप्रकाशान् ' सर्वतोभद्रमण्डलदेवताभ्योनमः ध्यायामि ।। समस्तप्रत्यूहसमुच्चयस्य विनाशने प्राप्तगुणाः

सुभव्याः । आवाहनं वितनोमिदेवा भद्राख्यका भव्य-करा भवन्तु" ॥१॥ सर्वतोभद्रमण्डल देवताभ्योनमः आवाहनं समर्पयामि० ॥२॥ "चित्रं प्रभासासुरमच्छ-शोभनं समर्पितं साम्प्रतमासनं हि । श्रीसर्वतोभद्रसुरा भजन्तु भवन्तु मेऽभीष्टकराः सदैव' सर्वतो भद्र-मण्डल देवताभ्यो नमः आसनं समर्पयामि ॥ ३ ॥ "कस्तूरिका सुरभिचन्दनमोदयुक्तमेलालवङ्गघनसारसु-वासितं च । पाद्यं ददामि जगदेकनिवासदेवाः साज्ञा हि भद्रविबुधाः प्रतिमानयन्तु" सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः पाद्यं समर्पयामि ॥४॥ "सौजन्य सौख्यजननी जननी जनानां येषां कृपैव वसुधा वसु-धारिणी च । ते सर्वदेव गुरुगौरव धारि देहा अर्घं सदैव हि सुरा मम धारयन्तु' सर्वतो भद्रमण्डल देवता-भ्यो नमः अर्घं समर्पयामि ॥५॥ कङ्कोलपत्र हरि चन्दन पुष्पयुक्तं एलालवङ्ग लवली घनसार सारम् । दत्तं सदैव हृदये करुणाशयेऽस्मिन् देवा भजन्तु शुभ-माचमनीयम्भः" सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः आचमनीयं समर्पयामि ॥ ६ ॥

"'विमल गाङ्गजलेनयुतं पयोदधिसितामधुसर्पिरूपान्वितम् । प्रियतरं भवतां परिगृह्वत यदि कृपाप्रभवो मयिसेवके'' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।।७।। 'जले समादाय निपातितानि नवानि पुष्पाणि मनो हराणि । स्नानं विधेयं विबुधाः समन्ताः श्रीसर्वतोभद्र कमण्डलेस्मिन्' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः स्नानं समर्पयामि ।।८।। अनर्घ्यरत्नैरतिभासितं शुभं सदा प्रियं मङ्गलकारकंहस्त् । स्वच्छं च वस्त्रं विनिवेदितं मया मोदप्रद वै भवतां कृते भवेत्'' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः वस्त्र समर्पयामि ॥ ६ ॥ कौशेयसूत्रविहितं विमलं शुचारु वेदोक्तरीति विहितं परिपावनं च । साङ्गाहि भद्रविबुधाः सुनिवेदितं च यज्ञोपवीत मुररीक्रियतां सुदेवाः' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि ॥ १० ॥ 'विविधतापविनाशविचक्षणाः परमभक्तियुतेन निवेदितम् । सुरवरा उपवस्त्रमिदं नवं सुरभितं परिगृह्णत मेऽधुना' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः उपवस्त्रं समर्पयामि ॥ ११ ॥

'सकलताप समुद्रनिवारकाः निखिलदेव समूहसुपूजिताः। मम मुदा ननु भद्रदिवौकसः सुरभिगन्धमिमं परिगृह्णीत' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः गन्धं समर्पयामि ॥१२॥ विमलगाङ्गजलैः परिमार्जितान्-सुरभिकुङ्कुमकेशर रञ्जितान्। भजत भद्रसुरा विमलाक्षतान् सदयमेतदिहास्ति निवेदनम्' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः अक्षतान् समर्पयामि ॥१३॥ बहुविधं परितोहि समाहृतं समुचितं मकरन्द समन्वितम्। विकसितं कुसुमं विनिवेदितं कुरु मे स... नयनाञ्जले' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो न... पुष्पाणि समर्पयामि ॥१४॥ 'धूपादिकेनातिसुवासितानि शोणश्रियानन्द विवर्धनानि। श्रीरक्तचूर्णानि-सुशोभितानि भद्रामरा वो मनसाऽर्पयामि' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नम रक्तचूर्णं समर्पयामि॥१५॥ लवङ्गपाटीवरचूर्णरम्यं सर्वामराणामपि सौख्यकारि। लोकत्रये गन्धकरं पवित्रं गृह्णन्तु भद्रात्रिदशाः सुधूपम्' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः धूपमाघ्रापयामि ॥१६॥ श्रीसर्वतोभद्र कमण्डलेऽस्मिन् निष-

गणदेवा विनिवेदितं च । प्रज्वालितं ध्वान्तविनाशकारकं गृह्णन्तु दीपं सुशिखं विशालम्'सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः दीपं दर्शयामि ॥ १७ ॥ सिद्धान्त कर्पूरविराजितं पुरः सौरभ्यसान्द्रेण विवर्धितं यथा । नैवेद्यमेतद् रुचिरं सुगन्धितं स्वीकृत्य मामत्र कृतार्थयन्तु' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः नैवेद्यं निवेदयामि ॥१८॥ 'ब्रह्मादिभद्रविबुधाः सदने मदीये भक्त्यार्पितं परमगन्धयुतं सुरम्यम् । हस्तेलवङ्गबहुलं क्रमुकादियुक्तं ताम्बूलमद्य मम गृह्णत हे सुरेन्द्राः' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः ताम्बूलं समर्पयामि ॥१९॥ देवासुरैर्नित्यमशेषकाले प्रगीयमानाः प्रभवः पुराणाः । गृह्णन्तु सद्यः खलु दक्षिणां च ध्यानेन भक्ते मयि वर्तितव्यम्' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः दक्षिणां समर्पयामि॥२०॥ 'नीराजना सौख्यमयी सदैव गाढ़ान्धकरानपि दूरयित्री। अशेषपापैः परिपूरितस्य शुद्धिं करोति म्रियमानवस्य' सर्वतोभद्रमण्डल देवताभ्यो नमः नीराजनं समर्पयामि ॥२१॥ प्रदक्षिणाः सन्ति प्रदक्षिणास्तथा पदे

पदे दुःखविनाशिका अपि। जन्मान्तरस्यापि विनाशकारिकाः पापस्य याश्चित्तविवर्धितस्य' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि॥२२॥ 'पुष्पाञ्जलिं सकलभद्रसुरा मदीयं भक्त्यार्पितं मधुर गन्धयुतं ससारम्। दीने विधाय करुणां मयि हे सुरेन्द्राः स्वीकृत्य दीनजनवत्सलतां किरन्तु' सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥२३॥ 'जानामि नोर्चनविधिं परमं क्षमध्वं लोकार्पितपुञ्जमतुलं क्षपयन्तु नित्यम्। ब्रह्मादिभद्रविबुध सुखमाकिरन्तु कुर्वन्तु दूरमनिशं दुरितान् समस्तान् सर्वतो भद्रमण्डल देवताभ्यो नमः स्तुतिं समर्पयामि ॥ २४ ॥

इस प्रकार सोलह प्रकार के उपचारों द्वारा सर्वतो भद्रमण्डल देवताओं का पूजन करे। अनन्तर दोनों हाथों को जोड़कर भद्रमण्डल की प्रार्थना करें—

'सुपूजिता मयादेवा कुर्वन्तु मम मङ्गलम्। मम यज्ञस्य संसिद्ध्यै क्षमध्वमनयाऽर्चया' ततो मण्डलमध्ये कलशं संस्थाप्य तत्र स्थाप्य देवप्रतिमाया

उपरि हस्तं निधाय अग्नुत्तारणपूर्वकं पञ्चोपचारैः पूजयेत् । ततो ब्रह्मादिभ्यः पायसबलिं दद्यात् इति रुद्र पद्धतौ उक्तम् ।

अथ लिङ्गतोभद्र देवता स्थापन क्रम पक्षे—

ॐ नमः कृत्स्नायतया धावते सत्त्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन ऽआव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः॥ हस्ते भू० असिताङ्गभैरवाय० असिताङ्गभैरवमा०॥१॥ आग्नेयाम् तद्बाह्ये पूर्वादिक्रमेण पूर्वे—शिवत्रऽआदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वार्ध्रीनसस्ते मत्या ऽअरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिःकुटरुर्दात्यौहस्ते व्वाजिनां कामाय पिकः॥ ॐ भू० रुरुभैरवाय० रुरुभैरवमा० ॥२॥ दक्षिणस्याम्—ॐ उग्रँ ल्लोहितेन मित्रँ सौव्व्रत्येन रुद्रं दौव्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साद्ध्यान्प्रमुदा॥ भवस्य कण्ठ्यँ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं

१- ततः तन्मध्ये ताम्र कलशं संस्थाप्य पूर्णपात्रोपरि कृताग्न्युत्तारणां सप्राणप्रतिष्ठां सौवर्णमयीं प्रतिमां संस्थाप्य देवतानां सर्वासां-प्रतिमां संस्थाप्य पूजयेत् ।

महादेवस्य यकृच्छर्व्वस्य व्वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥ ॐ भू० चण्डभैरवाय० चण्डभैरवमा० ॥३॥ नैर्ऋ-त्याम्—ॐ इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यन्दिशाञ्जत्र-वोऽदित्यै भसज्जीमूतान्हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ ऽउदर्य्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यान्दिवं व्वृक्का-भ्याङ्गिरीन्प्लाशिभिरुपलान्प्लीह्ना व्वल्मीका-न्क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान्हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्याᳬं समुद्रमुदरेण व्वैश्वानरं भस्मना ॥ ॐ भू० क्रोधभैरवाय० क्रोधभैरवमा० ॥ ४ पश्चिमे—ॐ उन्नत ऽऋषभो व्वामनस्त ऽऐन्द्राव्वै-ष्णवा ऽउन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऽऐन्द्रा-बार्हस्पत्याः शुकरूपा व्वाजिनाः कल्माषा ऽआग्नि-मारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥ ॐ भू० उन्मत्तभैरवाय० उन्मत्तभैरवमा० ॥ ५ ॥ वायव्याम्—ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या ऽउन्नयामि ॥ समापो ऽअद्भि-रग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ ॐ भू० कपालभैरवाय० कपालभैरवमा० ॥ ६ ॥ उत्तरे—ॐ उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ॥ सासह्वाँश्चाभियुग्वा च व्विक्षिपः

स्वाहा ॥ ॐ भू० भीषणभैरवाय० भीषणभैरवमा० ॥७॥ ईशान्याम्—ॐ नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ॐ भू० संहारभैरवाय० संहारभैरवाय० संहारभैरवमा० ॥८॥ तद्बाह्ये पूर्वादिक्रमेण-पूर्वे—ॐ नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥ ॐ भू० हस्ताय० भवमा० ॥ ९ ॥ आग्नेय्याम्—ॐ अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना ॥ शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तः पर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥ ॐ भू० सर्वाय० सर्वमा० ॥१०॥ दक्षिणे—ॐ उग्रंल्लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा ॥ भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥ ॐ भू० पशुपतये० पशुपतिमा० ॥११॥

नैर्ऋत्याम्—ॐ तमीशानम् ॥ ॐ भू० ईशानाय० ईशानमा० ॥१२॥ पश्चिमे—ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव ऽउतो त ऽइषवे नमः ॥ बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ ॐ भू० रुद्राय० रुद्रमा० ॥ १३ ॥ वायव्याम्—ॐ उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ॥ सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥ ॐ भू० उग्राय० उग्रमा० ॥१४॥ उत्तरे—ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य-वर्णं तमसः परस्तात् ॥ तमेव विदित्वाऽति मृत्यु-मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ॐ भू० भीमाय० भीममा० ॥१५॥ ईशान्याम्—ॐ मा नो महान्तमुत मा नो ऽअर्भकं मा न ऽउक्षन्तमुत मा न ऽउक्षितम् ॥ मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रिया स्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ॐ भू० महते० महान्तमा० ॥ १६ ॥ तद्बाह्ये पूर्वादि क्रमेण पूर्वे—ॐ स्योना पृथिवि० ॥ ॐ भू० अनन्ताय० अनन्तमा० ॥१७॥ आग्नेय्याम्—ॐ देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ॥ निहारञ्च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥ ॐ भू० वासुकये०

वासुकिमा० ॥१८॥ दक्षिणे—ॐ नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्म्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥ ॐ भू० तक्षकाय० तक्षकमा० ॥१९॥ नैर्ऋत्याम्—ॐ पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्व्वाघाटस्ते व्वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो व्वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥ ॐ हस्ते कुलिशाय० कुलिशमा० ॥२०॥ पश्चिमे—ॐ सोमाय कुलुङ्ग ऽआरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥ ओं भू० कर्कोटकाय० कर्कोटकमा० ॥ २१ ॥ वायव्यम्-ॐ अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्न्यः पुरोहितः ॥ तमीमहे महागयम् ॥ उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा व्वर्चस ऽएष योनिरग्नये त्वा व्वर्च्चसे ॥ ॐ शङ्खपालाय० शङ्खपालमा० ॥ २२ ॥ उत्तरे—ॐ सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऽऊर्णा-

सूत्रेण कवयो व्वयन्ति ॥ अश्विना यज्ञः सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं व्वरुणो भिषज्यन् ॥ ॐ भू० कम्बलाय० कम्बलमा० ॥ २३ ॥ ईशान्याम्–ॐ अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव ऽआग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याᳬ सौर्य्यामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्व्वायव्यः श्वेतः पुच्छ ऽइन्द्राय स्वपस्याय व्वेहद्वैष्णवो व्वामनः ॐ भू० अश्वतराय० अश्वतरमा० ॥ २४ ॥ ईशानेन्द्रयोर्मध्ये–ॐ नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्व्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्ग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥ ॐ भू० शूलाय० शूलमा० ॥२५॥ इन्द्राग्निमध्ये–ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो ऽअजायत ॥ श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ ॐ भू० चन्द्रमौलिने० चन्द्रमौलिनमा० ॥२६॥ अग्नियमयोर्मध्ये–ॐ चन्द्रमा ऽअप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते

दिवि ॥ रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृह६ हरि रेति कनिक्रदत् ॥ ॐ भू० चन्द्रमसे० चन्द्रमसमा० ॥२७॥ यमनिर्ऋतिमध्ये—ॐ आशुः शिशान ० ॥ ॐ भू० वृषभध्वजाय० वृषभध्वजमा० ॥ २८ ॥ निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—ॐ सुगा वो देवाः सदना ऽअकर्म्म य ऽआजग्मेद६ सवनं जुषाणाः ॥ भरमाणा व्वहमाना हवी६ष्यस्मे धत्त व्वसवो व्वसूनि स्वाहा ॥ ॐ भू० त्रिलोचनाय० त्रिलोचनमा० ॥२९॥ वरुणवायुमध्ये—ॐ रुद्राः स६सृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे ॥ तेषां भानुरजस्र ऽइच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ ॐ भू० शक्तिधराय० शक्तिधरमा० ॥ ३० ॥ वायु सोममध्ये-ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० ॥ ॐ भू० महेश्वराय० महेश्वरमा० ॥ ३१ ॥ सोमेशानयोर्मध्ये ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती ॥ तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ॐ भू० शूलपाणये० शूलपाणिमा० ॥ ३२ ॥ इति लिङ्गतो भद्र देवता स्थापनं पूजनं पंचोपचारैः पूजयेत् । ततः लिंगतोभद्रवेद्युपरि मध्ये कलशं संस्थाप्य-

कलशोपरिकृताग्न्युत्तारणपूर्वकं सुवर्ण प्रतिमां स्थापयेत् । तत पञ्चोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेत् । 'पूजतोऽसिमयादेवा कुर्वन्तु मम' मङ्गलम् । अस्य यज्ञस्य संसिद्धयै त्वमध्वमनयार्चया ॥

॥ इति लिङ्गतो भद्र पूजनम् ॥

अथ अग्नि स्थापनम्

तत्र आदावग्नि स्थापनम् । तद्यथा—यजमानो दक्षिणद्वार पश्चिमे उत्तराभिमुख उपविशेत् । ब्रह्म-हो द्वारपाल-जापकान् यथास्थानमुपवेशयेत् । आचार्यः स्वकुण्डपश्चिमे उपविश्य तदा सपत्नीको यजमानः कर्माङ्गं आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ स्मृत्वा गोत्रः शर्मा [वर्मा गुप्तः] करिष्यमाण सनवग्रहमख ग्रहयाग कर्मणि अग्न्यायतने पञ्चभूसंस्कार पूर्वकं अग्नि स्थापनं कर्म करिष्ये" तदङ्गत्वेन सम्मार्जन मेखला-योनि देवतास्थापन पूजनादि करिष्ये" इति संकल्प्य गोमयादि उपलिप्ते शुद्धदेशे शुद्धामृदाऽरत्निविस्तृतं होमानुसारेण तदधिकं वा समचतुरस्त्रं चतुरङ्गुलो-

न्नतं आदर्शसमं स्थण्डिलं, कुण्डं वा शुद्ध्यर्थं संमार्ज्य कुशोदकेन प्रोक्ष्य तत्र "इदं विष्णुः इति मंत्रेण उपरितन मेखलायां श्वेतवर्णा लङ्कृतायां ॐइदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढ मस्य पाᳪ सुरे" मध्यमेखलायां रक्तवर्णालङ्कृतायाम् "ॐविष्णवे नमः" विष्णुं, आवाह्य ॐब्रह्मयज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोव्वेनऽआवः। सबुन्ध्याऽउपमाऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्चव्विवः॥ 'ॐ ब्रह्मणे हस्तः' इति ब्रह्माणं आवाह्य अधो मेखलायां कृष्णवर्णायाम् ॐ इमारुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरा महेमतीः। यथा समसद्द्विपदे चतुष्पदेव्विश्वं पुस्टङ्ग्रा मेऽअस्मिन्ननातुरम्" ॐ रुद्राय नमः, इति रुद्रं आवाह्य योन्याम्—ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके नमानयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्' ॐ गौर्यै नमः" इति गौरी मावाह्य सर्वाः पूजयेत्। ततः सहस्त्रशीर्षेति मन्त्रेण कुण्डं कृत्वा ततस्तत् स्थण्डिलादिकं त्रिभिःदर्भैः प्रागग्रैः प्राकसंस्थं उदकसंस्थं च त्रिः संमृज्य गोमयोदका-

भ्यां उदकसंस्थं प्राक् संस्थं च त्रिः उपलिप्य (साग्निः स्फ्येन) निरग्निः कुशेन तन्मध्ये अग्निप्रतिष्ठापन प्रदेशे प्रादेशमात्राः स्थण्डिल प्रमाणा वा प्रागग्रा उदक संस्थाः तिस्त्रोरेखाः कुर्यात् ।

ततः ताभ्यो रेखाभ्य एकैकशोऽङ्गुष्ठानामिकेन क्रमेण पांसून् उधृत्य वामहस्ते परिगृह्य दक्षिणहस्तेन प्राञ्चमीशान्यां वा प्रक्षिप्य कुशोदकेन न्युब्जहस्तेन तन्त्रेण ता रेखाः "पुरुष एवेति" मन्त्रेण अभ्युक्षेत्। ततः तैजसेन पात्रेण असंभवे मृन्मयेन हस्तधृतेन श्रोत्रियागारात् स्वगृहाद्वा आचारात् सुवासिन्याऽऽनीति पात्रान्तरेणपिहितं निर्धूमं वह्ङ्गारमग्निं तासु रेखासु 'ॐ अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवां आसादयादिह' इति मन्त्रेण तूष्णीं वा प्रणमेत्। ततः आचारात् तत्पात्रे अक्षत पुष्पाणि क्षिपेत् । ततः तत्र प्रोक्षितैः इन्धनं प्रक्षिप्य वेणुधमनीं तृणादिकं वाऽन्तरा कृत्वा मुखेन तं धमेत् ।

अरणि मन्थन पक्षे—अभ्युक्षणानन्तरं कुण्डादिमध्ये मूलेन हिरण्यं शतअरत्नि परिमितं निधाय

वस्त्रेण कुण्डं आच्छाद्य मन्थनमारभेत्।

तद्यथा देशकालौ संकीर्त्य 'करिष्यमाणस नवग्रहमख ग्रहयागकर्माणि हवन साधन भूतस्य अग्नेः योनिरुपयोः अरण्योः पूजनं करिष्ये इति संकल्य ॐ अम्बेऽअम्बिके" इति मन्त्रेण अरणिभ्यां नमः इति पूजनं कृत्वा-अग्न्यायतनस्य पश्चात् प्राग्ग्री-वमुत्तर लोमकृष्णाजिनमास्तीर्य तत्र उदगग्रामधरारणिं निधाय तत्पूर्ववत् उत्तरारणिं च निधाय उत्तरारण्यां हस्तात् नवांगुलं प्रदेश विहाय मन्थन प्रदेशे प्रमन्थं मनधाय तदग्रे उदगग्रामोविलीं निधाय चात्रं रज्ज्वा त्रिवेष्टयित्वा प्राङ्मुखो यजमान ओविलीं धारयेत्। पत्नीं च पश्चिमाभिमुखी मन्थेत्। असामर्थेऽन्यः। अग्नि उत्पत्तिपर्यन्तं मन्थनसमये आग्नेयात् तत्र देवतांश्च मन्त्रान् पठन्ति। नाग्नि मन्थीयाः त्रयोदश ऋचः। जातमग्नि कांस्यपात्रे वा मृन्मय पात्रे सोपयनीके शुष्क गोयमपिण्डचूर्णं सतूलं (रुई) नारिकेल जटां (नारियल) च निधाय तत्र अरणिमन्थमग्नि प्रक्षिप्यधमन्यादि सुखेन प्रज्वलयेत्।

यजमानश्च देशकालौ संकीर्त्य—जातस्याग्नेः सम्भृत्यर्थं वरमूल्य आचार्याय तुभ्यं सम्प्रददे' इति दक्षिणां दद्यात्। ततः कुण्डात् वस्त्रंपसार्य दारुभिर्ज्व-लन्तं अग्निं गृहीत्वा कुण्डात् बहिः आग्नेय्यां निधाय, आग्नेयकोणमार्गेण कुण्डमध्ये नीत्वा, ॐ अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाह मुपब्रुवे। देवाँऽआसादया-दिह॥ इति मूलेन च तूष्णा वा स्वाभिमुख नभौ स्थापयेत्। प्रबोधयेच्च बलवर्धनं अग्निम् (पञ्च-कुण्डयादिपक्षे 'अग्निस्थापनं कुरुध्वम्" इति आचार्यप्रेषिताः सर्वे होतारः आचार्य कुण्डात् अग्निं आहृत्य कुण्डसंख्यया विभज्य स्व स्व शाखोक्त-मार्गेण यजमानशाखया वा स्वस्व कुण्डे प्रणयेयुः यज्ञकर्म समाप्त्यन्तं रक्षेयुश्च) अथ अग्निध्यानं कृता-कृतम्—'रुद्रतेजः समुद्भूतंद्विमूर्धानं द्विनासिकम्। षण्नेत्रं चतुःश्रोत्रं त्रिपादं सप्तहस्तकम्। वामभागे चतुर्हस्त सव्यभागे त्रिहस्तकम्। स्त्रुवं स्त्रुचं च शक्तिं च अक्षमालां च दक्षिणे। तोमरं व्यजनं चैवघृतपात्रं तु वामके। बिभ्रतं सप्तभिर्हस्तैः द्विमुखं सप्तजिह्वकम्।

दक्षिणं च चतुर्जिह्वं त्रिजिह्वं चोत्तरं मुखम्। कांटिद्वादश मूर्त्याख्यं द्विपञ्चाशत्कलायुतम्। स्वाहा स्वधा वषट्-कारैः अङ्कितं मेषवाहनम्। रक्तमालाम्बरधरं रक्त-पद्मासनस्थितम्। रौद्रं तं वह्निनामानं वह्निमावाह-याम्यहम्। त्वं मुखं सर्वदेवानां सप्तर्चिरमितद्युते। आगच्छ भगवन्देव कुण्डेऽस्मिन् सन्निधो। भव" इति ध्यात्वा ततः—

ॐ चत्वारिश्रृङ्गा त्रयोऽअस्य पादाद्वेशीर्षे सप्त-हस्तासोऽअस्य त्रिधाबद्धो वृषभोरोरवीति महोदेवो मर्त्याऽआविवेश" इति मन्त्रेण षोडऽशोपचारैः अग्नि संपूजयेत् [पञ्चोपचारैः इति कल्पद्रुमे]। ततः कुण्डात् उत्तरे विधिना कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणं, मृत्युञ्जयं च संपूजयेत्।

॥ इति अग्निस्थापनम् ॥

अथ सूर्यादि नवग्रह स्थापनम्

हस्तमितवस्त्राच्छादित वेद्यां चतुर्दिक्षु सार्द्धा-

---

१. मध्ये तु भास्करं विद्याच्छशिनं पूर्वदक्षिणे। दक्षिणे लोहितं विद्याद्बुधः पूर्वोत्तरेण तु। उत्तरे तु गुरुं विद्यादपूर्वेणैव तु भार्गवम्। पश्चिमे च शनिं विद्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे। पश्चिमोत्तरतः केतुः स्थाप्यौ वै शुक्लतण्डुलैः (स्कन्दे)।

ङ्गुलपरिमितं वस्त्रं दिक्पाल स्थापनार्थं त्यक्त्वा पूर्वं दिश्याग्नेयमारभ्य ईशानान्तं एकविंशत्यङ्गुलमितां रेखां दत्वा एवं दक्षिण पश्चिमोत्तरदिक्षु तत्तकोणात् आरभ्य तत्तत्कोणपर्यन्तं रेखां कुर्यात् ।

तस्मिन् समचतुरस्त्रे सप्ताङ्गुलान्तराले प्राक्-पश्चिमायते द्वे रेखे कृत्वा तथैव दक्षिणोत्तरायते द्वे रेखे कुर्यात् । तत्र ग्रहणां स्थापनम् ।

ॐ तत्सदद्य "अस्मिन् सनवग्रहमख अमुक-याग कर्मणि सुवर्णप्रतिमासु आदित्यादि ग्रहाणां अधिदेवता प्रत्यधिदेवता पञ्चलोकपाल दिक्पालानां च स्थापनं पूजनं च करिष्ये, इति संकल्प्य—

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृत-म्मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ॐ भू० सूर्याय नमः सूर्यमा-वाहयामि स्थापयामि ॥१॥

ॐ इमन्देवाऽअसपत्नꣳ सुवद्धम्महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जान राज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ॥ इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश ऽएषवोमी

राजा सोमोस्माकम्ब्राह्मणानाᳬराजा" ॐ भू० सोमाय नमः सोमं आवाहयामि स्थापयामि ॥२॥ ॐ अग्नि-मूर्द्धादिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् ॥ अपाᳬ-रेताᳬसि जिन्वति' ॐ भू० भौमाय नमः भौमं आवाहयामि स्थापयामि ॥३॥ ॐउद्बुध्यस्वाग्ने प्रति-जागृहित्वमिष्टापूर्त्ते सᳬ सृजेथामयञ्च । अस्मिन्त्स-धस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत" ॐ भू० बुधाय नमः बुधमावाहयामि स्थापयामि ॥४॥

ॐबृहस्पतेऽअतियदर्य्योऽअर्हाद्युमद्विभाति क्रतु-मज्जनेषु । यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजाततदस्मासु द्रविणं-धेहि चित्रम्' ॐ भू० बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाह-यामि स्थापयामि ॥५॥ ॐ अन्नात्परिस्त्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिवत्क्षत्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं व्विपानᳬ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृत मधु" ॐ भू० शुक्राय नमः शुक्रमावाहयामि स्थापयामि ॥६॥ ॐशन्नो देवीरभिष्टय्यऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्त्रवन्तुनः" ॐ भू० शनैश्चराय नमः शनैश्चरमावाहयामि स्थापयामि ॥७॥ ॐ कया-

नश्चित्रऽआभुवदूतीसदा वृधः सखा । कयाशचिष्ठया वृता' ॐ भू० राहवे नमः राहुमावाहयामि स्थापयामि ॥८॥ ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशोमर्य्याऽअपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ॐ भू० केतवे नमः केतुमावाहयामि स्थापयामि ॥९॥

अधिदेवता स्थापनक्रमः

अधिदेवतानां दक्षिणपार्श्वे स्थापनं तद्यथा—ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्धनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा मृतात्" ॐ भू० ईश्वराय नमः ईश्वरमा० ॥१॥ ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्या वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाण मुम्मऽइषाण सर्व्वलोकम्मऽइषाण ॥ ॐ भू० उमायै नमः, उमामा ॥ २ ॥ ॐ यदक्रन्दः प्रथमञ्जायमानऽ उद्यन्त्समुद्रादुतवा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातन्तेऽ अर्व्वन्" ॐ भू० स्कन्दाय नमः, स्कन्दमा० ॥३॥ ॐ विष्णो रराटमसिविष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि व्विष्णोर्ध्रुवोसि । वैष्णवमसि व्विष्णवेत्त्वा"

ॐ भू० विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि स्थापयामि ॥४॥ ॐ आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर ऽइषव्वयोतिव्याधी महारथो जायन्तां दोग्ध्री धेनुर्व्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषाजिष्णू रथेष्ठाः ॥

सभेयो युवास्य यजमानस्य व्वीरोज्जायतान्नि-कामे निकामे नः पर्ज्जन्यो व्वर्षतु फलवत्यो नऽ ओषधः पच्यन्तां योगक्षेमोनः कल्पताम्" ॐ भू० ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमा ॥५॥ ॐ सजोषाऽइन्द्र सगणो-मरुद्भिः सोमम्पिब व्वृत्रहा शूर विद्वान्। जहि शत्रूँ रपमृधोनु दस्वाथाभयङ्कृणुहि व्विश्वतो नः" ॐ भू० इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि ॥६॥ ॐ यमायत्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे" ॐ भू० यमाय नमः यममावाह-यामि स्थापयामि ॥७॥ ॐ काषिरसि समुद्रस्यत्वा क्षित्याऽउन्नयामि। समापोऽअद्भिरग्मतसमोषधी-भि रोषधीः" ॐ भू० कालाय नमः कालमावाहयामि स्थापयामि ॥८॥ ॐ चित्रावसो स्वस्ति ते पारम-

शीय" ॐ भू० चित्रगुप्ताय नमः चित्रगुप्तमावाह-
यामि स्थापयामि ॥६॥

अथ प्रत्यधिदेवतास्थापन क्रमः

प्रत्यधिदेवतानां वामपार्वेस्थापनम्—ॐ अग्नि-
न्दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँऽआसादयादिह"
ॐ भू० अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि
॥१॥ ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवस्ताऽऊर्ज्जेदधातन।
महेरणाय चक्षसे" ॐ भू० अद्भयो नमः अपः
आवा यामि स्थापयामि ॥ २ ॥ ॐ स्योनापृथिविनो
भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छानः शर्म सप्रथाः" ॐ
भू० पृथिव्यै नमः पृथिवोमावाहयामि स्थापयामि
॥३॥ ' ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्।
समूढमस्य पाᳬसुरे स्वाहा" ॐ भू० विष्णवे नमः
विष्णुमावाहयामि स्थापयामि ॥४॥

ॐ इन्द्रऽआसान्नेता बृहस्पतिर्द्दक्षिणा यज्ञः
पुरऽएतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनाञ्जयन्ती-
नाम्ममरुतो यन्त्वग्रम्" ॐ भू० इन्द्राय नमः इन्द्र-
मावाहयामि स्थापयामि ॥५॥

ॐ अदित्यै रास्नासीन्द्राण्याऽउष्णीषः। पूषासिघर्म्मायदीष्व" ॐ भू० इन्द्राण्यै नमः इन्द्राणीमावाहयामि स्थापयामि ॥६॥

ॐ प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वारूपाणि परिताबभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्त्वयममुष्य-पिता सावस्यापिताव्वयꣳस्यामपतयो रयीणाꣳ स्वाहा "ॐ भू० प्रजापतयेनमः प्रजापतिमावाहयामि स्थापयामि ॥७॥

ॐ नमोऽस्तु सर्प्पेभ्यो ये ये च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे यादिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः' ॐ भू० सर्प्पेभ्यो नमः सर्पानावाहयमि स्थापयामि ॥८॥
ॐ ब्रह्मयज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतꣳसुरुचो व्वेनऽ आवः। सबुध्न्याऽउपमाऽअस्यव्विष्ठाः सतश्च योनि-मसतश्च व्विवः" ॐ भू० ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि ॥९॥

अथ पञ्चलोकपाल स्थापन क्रमः

अथ विनायकादिपञ्चलोकवालानां ग्रहाणां उत्तरे वा स्थापयेत्—'ॐ गणानान्त्वा" भू० गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि स्थापयामि ॥ १ ॥

"ॐ अम्बेऽअम्बिके०" भू० दुर्गाय नमः दुर्गामावाहयामि स्थापयामि ॥२॥

ॐ वायोयेत्ते सहस्त्रिणो०" ॐ भू० वायवे नमः, वायुमावाहयामि स्थापयामि ॥३॥

ॐ घृतं घृत पावान:" ॐ भूः आकाशाय नमः । आकाशमावाहयामि स्थापयामि ॥४॥

ॐ यावाङ्कशा०" ॐ भू० अश्विभ्यां नमः अश्विनौमावाहयामि स्थापयामि ॥५॥

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्०" ॐ भू० वास्तोष्पतये नमः वास्तोष्पस्तिमावाहयामि स्थापयामि० ॥६॥

ॐ नहिस्प शमविदन्न न्यमास्माद्वैश्वानरात्पुरऽएतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृता ऽअमर्त्यम्वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः" । ॐ भू० क्षेत्राधिपतये नमः क्षेत्रापतिमावाहयामि स्थापयामि ॥७॥

अथ दशदिक्पाल स्थापन क्रमः

अथ बाह्ये दशदिकपालानां आवाहनं कुर्यात् तद्यथा—

त्रातारमिन्द्रमविता" ॐ भू० इन्द्राय नमः इन्द्रमावहयामि स्थापयामि ॥१॥ ॐ त्वन्नो ऽअग्ने-तवदेव" ॐ भू अग्नये नमः अग्निमा वाहयामिस्था-पयामि ॥२॥ ॐ यमायत्वङ्गिरस्वते०" ॐ भू यमा-यनमः यममावाहयामि स्थापयामि ॥३॥ ॐ असुन्व-न्तमयजमान मिच्छस्ते नस्येत्यामन्विहितस्करस्य । अन्य मस्म दिच्छसात ऽइत्यानमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु" ॐ भू निर्ऋतये नमः निर्ऋति मावा-हयायि स्थापयामि ॥४॥ ॐ तत्वागामि ब्रह्मणा वन्द-मानस्तदाशास्ते यजमानोहर्विभिः । अहेडमानो वरु-णेहबोध्युरुशꣳ समानऽआयुः प्रमोषीः" ॐ भू० वरु-णाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि ॥ ५ ॥ ॐ आनो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्त्रिणीभि रुपया हि यज्ञम् । वायोऽअस्मिन्सवनेमायदस्व यूम्पात स्वस्तिभिः सदाः" ॐ भू० वायवे नमः वायुमावा-हयामि स्थापयामि ॥६॥ ॐ वयꣳसोमव्रते तव मन-स्तनुषु विभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि" ॐ भू० सोमायनमः सोममावाहयामि स्थापयामि ॥ ७ ॥ ॐ

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियं जिन्न्वमवसे हूमहे व्वयम् । पूषानो यथा व्वेदसा मसद्वृधे रक्षितापायुर दब्धः स्वस्तये" ॐ भू० ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि स्थापयामि ॥ ८ ॥

ॐ अस्मेरुद्रामेहनापर्वतासोवृत्रहत्ये भरहूतौ सयोषाः । यः शः सतेस्तुवतेधायिपज्र ऽइन्द्रज्येष्ठा ऽअस्माँऽ अवन्तुदेवाः" पूर्वईशानयोर्मध्ये० ॐ भू० ब्रह्मणेनमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि ॥९॥

ॐस्योनापृथिवीनोभवान्नृक्षरानिवेशनि । यच्छा-नः शर्म्म सप्रथाः" निऋ तिपश्चिमयोर्मध्ये० ॐ भू० अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि स्थापयामि ॥१०॥

ॐ मनोजूतिजु षतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमि-मन्तनो त्वरिष्टंयज्ञः समिमन्धातु । व्विश्वे देवास ऽइहमादयन्तामों ३ प्रतिष्ठ ॥ ॐ सूर्याद्य नन्तान्त देवताः सुप्रतिष्ठाः वरदाः भवन्तु । ततः षोडशोप-चारैः पूजयेत् ।

"यत्कृतं पूजनं देवं भक्तिश्रद्धा विवर्जितम् । परिगृ-हणन्तु तत्सर्वं सूर्यादि ग्रहनायकाः ॥१॥ आयुर्विद्या-

धनं सौख्यं यशः शौर्यं च पुष्कलम् । पुत्रान्दत्तं धनं दत्तं सर्वान्कामांश्च दत्त मे ॥२॥ ब्रह्मामुरारि स्त्रिपुरान्तकारो भानुः शशी भूमि सुतो बुधश्च । गुरुश्च शुक्रः शनि राहु केतवः सर्वेग्रहाः शान्ति करा भवन्तु ॥ ३ ॥

इस प्रकार नवग्रह की प्रार्थना करके ग्रहवेदी के ईशान कोण की वेदी पर कलश स्थापन करे. उसके ऊपर अग्न्युत्तारण पूर्वक सुवर्ण प्रतिमा की स्थापना करे । और वरुण का पूजन करे ।

तद्यथा—ॐ असंख्याता सहस्राणि येरुद्रा ऽअधि भूम्याम् । तेषाᳬं सहस्र योजने वधन्वानि तन्मसि । ॐ असंख्यात रुद्रेभ्यो नमः । असख्यातरुद्रान् आवाहयामि स्थापयामि ॥ इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

॥ इति ग्रहस्थापनम् ॥

आग्नेयकोणे[१] योगिनी पूजनम्

मण्डपस्य आग्नेये हस्तमात्रे हस्तोन्नते प्रादेशोन्नते वा वप्र त्रययुते रक्तवस्त्राच्छादिते पीठे चतुर्धा-

१—"आग्नेय्यां मातृकावेदी, वास्तुवेदी च नैर्ऋते । क्षेत्रपालस्य वायव्यां, ईशान्यां च नवग्रहाः" (कुण्डरत्नावली) ।

विभाजिते पश्चिमतो भागत्रये पूर्वां परं उदक्दक्षिणं च नवररेखा करणेन चतुःषष्टिकोष्ठानि सम्पाद्य तेषु प्रतिकोष्ठं एकैकं त्र्यस्त्रं सम्पादयेत् इत्येवं चतुःषष्टि त्र्यस्त्राणि सम्पादयेत् तेषु च चतुःषष्टि योगिनीर्वक्ष्यमाण प्रकारेण आवाहयेत् ।

अवशिष्टे पूर्वभागे त्रेधाविभक्ते त्रीणि त्र्यस्त्राणि प्राङ्मुखानि विलिख्य तेषु स्वस्तिवाचन विधिना मन्त्रावृत्त्या कलशत्रयं संस्थाप्य पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा विष्णादि देवान् सम्यक् अभ्यर्च्य सौवर्णस्तिस्त्रः प्रतिमायाः कृत अग्न्युत्तारणाः संस्थाप्य तासु महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती उदक् संस्था आवाह्य पूजयेत् । तद्यथा योगिनीवेदेः पश्चात् उपविश्य देशकालौ स्मृत्वा—"अस्यकर्मणः समृद्धये महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती सहितानां चतुःषष्टियोगिनीनां पूजनं करिष्ये" इति संकल्प्य महाकाल्यादि प्रतिमासु योगिनीप्रतिमासु च ।

ॐ अश्मन्नूर्ज्जम्पर्वते शिश्रियाणामद्भ्यऽओषधीभ्योव्वनस्पतिभ्योऽ अधिसम्भृतम्पयः ॥

तान्न ऽषमूर्ज्जन्धत्तमरुतः सꣳ ररणा ऽ अश्मँस्तेक्षुन्नयित ऽऊर्ग्ग्यन्द्विष्मस्तन्ते शुगृच्छतु ॥

इति मन्त्रेण अग्न्युत्तारणं कृत्वा प्रतिमा यथा स्थानं संस्थाप्य तास्वावाहनादिकं कुर्यात् । प्रतिमाभावे तण्डुल पूगीफल (सुपारी) रजतखडादावाहनम् । ॐ अम्बे ऽअम्बिके ऽम्बालिकेनमानयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्" ।

महाकाली पूजन में तथा सभी उपचारों में यह मन्त्र आवर्तनीय है एवं महालक्ष्मी-महासरस्वती पूजन में—

ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्ऽम इषाण सर्वलोकम्म् इषाण ॥ ॐ पावकानः सरस्वती व्वाजेभिर्व्वा जिनीवती । यज्ञं व्वष्टुधियावसुः । इति मन्त्रावावर्त्तनीयौ ।

अथ योगिनीपूजनमन्त्राः—

ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पति धियञ्जिन्वमवसे हूमहे व्वयम् ॥ पूषा नो यथा व्वेदसामसद्वृधे रक्षितापायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ॐ भू० दिव्ययो-

गिन्यै० दिव्ययोगिनीमा० ॥१॥ ॐआब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्च्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर ऽइषव्योऽतिव्याधी म ारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्व्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्य्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य व्वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्ज्जन्यो व्वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्च्यन्तां योगक्षे मो नः कल्पताम् ॥ ॐ भू० महायोगिन्यै० म ायोगिनीमा० ॥ २ ॥ ॐ महाँ २ ॥ ऽइन्द्रो व्वज्र हस्तः षोडशी शर्म्म यच्छतु ॥ न्तु पाप्मानं य्योऽस्मान्द्वेष्टि ॥ उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्म्महेन्द्राय त्वा ॥ ॐ भू० सिद्धियोगिन्यै० सिद्धियोगिनीमा० ॥ ३ ॥ ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ॥ पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॐमाहेश्वर्य्यै०माहेश्वरीमा० ॥४॥ ॐ आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि स स्रस्य प्रतिमां व्विश्वरूपम् ॥ परिवङ्धि हरसा माभि म ँस्थाः शतायुष कृणुहि चीयमानः ॥ ॐ भू० प्रेताक्ष्यै० प्रेताक्षीमा० ॥५॥ ॐ स्वर्णघर्म्मःस्वाहा स्वर्णार्क्कःस्वाहा स्वर्णशुक्रः

स्वाहा । स्वर्णज्ज्योतिस्वाहा स्वर्णसूर्य्यं स्वाहा ॥ ॐ भू० डाकिन्यै० डाकिनीमा० ॥ ६ ॥ ॐ सत्यञ्च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनञ्च मे विश्वञ्च मे हश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातञ्च मे जनिष्यमाणञ्च मे सूक्तञ्च मे सुकृतञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ॐ भू० काल्यै० कालीमा० ॥ ७ ॥ ॐ भायै दार्व्वाहारं प्रभाया ऽअग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं व्वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्व्वेभ्यो लोकेभ्य ऽउपसेक्तारमव ऽऋत्यै व्वधायोपमन्थितारं मेधाय व्वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ ॐ भू० कालरात्र्यै० कालरात्रीमा० ॥ ८ ॥ [इति प्रथमाष्टकपङ्क्तिः ।]

ॐ जिह्वा मे भद्रं व्वाङ्महो मनो मन्न्युः स्वराड् भामः ॥ मोदाः प्रमोदा ऽअङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ॐ भू० निशाकर्यै० निशाकरीमा० ॥ १ ॥ ॐ हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय

स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा॥ ॐ भू० हुङ्कार्य्यै० हुङ्कारीमा० ॥२॥ ॐ अग्निश्च मे घर्म्मश्च मेऽर्क्कश्च मे सूर्य्यश्च्च मे प्राणश्च्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च्च मे दितिश्च मे द्यौश्च्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ॐ भू० सिद्धिवैतालिकायै० सिद्धिवैतालिकामा० ॥ ३ ॥ ॐ पूषन् तव व्रते व्वयं न रिष्येम कदाचन ॥ स्तोतारस्त ऽइह स्मसि ॥ ॐ भू० ह्रींकार्य्यै० ह्रींकारीमा० ॥ ४ ॥ ॐ व्वेद्या व्वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् ॥ यूपेन यूप ऽआप्यते प्रीतो ऽग्निना ॥ ॐ भू० भूतडामरायै० भूतडामरामा० ॥ ५ ॥ ॐ यममग्निः सहस्रिणो व्वाजस्य शतिनष्पतिः ॥ मूर्द्धा कवी रयीणाम् ॥

ॐ भू० ऊर्ध्वकेश्यै० ऊर्ध्वकेशीमा० ॥६॥ ॐ इमं मे व्वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ॥ त्वामवस्युरा-चके ॥ ॐ भू० विरूपाक्ष्यै० विरूपाक्षीमा० ॥७॥ ॐ यमाय यमसूमथर्व्वभ्यो ऽवतोकाᳪ संव्वत्सराय पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरी-मिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं व्वत्सराय व्विजर्ज्जराᳪ संव्वत्सराय पलिक्नीमृभुभ्यो ऽजिनसन्धᳪ साध्ये-भ्यश्चर्म्मम्नम् ॥ ॐ भू० शुष्काङ्ग्यै० शुष्का-ङ्गीमा० ॥८॥ [इति द्वितीयाष्टकपङ्क्तिः ।]

ॐ असि यमो ऽअस्यादित्यो ऽअर्व्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्व्रतेन ॥ असि सोमेन समया व्वि-पृक्त ऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ॐ भू० नरभोजन्यै० नरभोजनीमा० ॥१॥ ॐ मित्त्रस्य चर्षणीधृतो ऽवो देवस्य सानसि ॥ द्युम्नं चित्त्रश्रवस्त-मम् ॥ ॐ भू० फेत्कार्यै० फेत्कारीमा ॥२॥ ॐ अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो ऽअस्थान्निर्ज्जगन्वान् तमसो ज्यो-तिषागात् ॥ अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग ऽआजातो व्विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ ॐ भू० वीरभद्रायै० वीर-

भद्रामा० ॥३॥ ॐ भग प्प्रणेतर्भग सत्यराधो भगे मान्धियमुदवाददन्नः ॥ भग प्प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्प्र नृभिन्नृर्वन्तः स्याम ॥ ॐ भू० धूम्राक्ष्यै० धूम्राक्षीमा० ॥४॥ ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरोगायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ ॥ स्तोम ऽआत्मा छन्दाᳬंस्यङ्गानि यजूᳬंषि नाम ॥ साम ते तनूर्व्वामदेव्यं य्यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः सफाः सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छस्वः पत ॥ ॐ भू० कलहप्रियायै० कलहप्रियामा० ॥५॥ ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥ अक्षिन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धद्ध्वम् ॥ ॐ भू० राक्षस्यै० राक्षसीमा० ॥६॥ ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनी स्थो व्वरुणस्य ऽऋतसदन्यसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमासीद ॥ ॐ भू० घोररक्ताक्ष्यै० घोररक्ताक्षीमा० ॥७॥ ॐ व्वरुणः प्प्राविता भुवन्मित्रो

व्विश्वाभिरूतिभिः ॥ करतान्नः सुराधसः ॥ ॐ भू० विशालाक्ष्यै० विशालाक्षीमा० ॥८॥ [इति तृतीयाष्टकपङ्क्तिः ॥]

ॐ हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता व्वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ॥ नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऽऋतजा ऽअद्रिजा ऽऋतम्बृहत् ॥ ॐ भू० कौमार्यै० कौमारीमा० ॥१॥ ॐ सुसन्दृशन्त्वा व्वयं मघवन् वन्दिषीमहि ॥ प्र नूनं पूर्णबन्धुरस्तुतो यासि व्वशाँ२॥ ऽअनु योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ॐ भू० चण्ड्यै० चण्डीमा० ॥२॥ ॐ प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ ॐ भू० वाराह्यै० वाराहीमा० ॥३॥ ॐ देवीरापो ऽअपान्नपाद्यो व ऽऊर्म्मिर्हविष्य ऽइन्द्रियावान्मदिन्तमः ॥ तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भागस्थ स्वाहा ॥ ॐ भू० मुण्डधारिण्यै० मुण्डधारिणीमा० ॥ ॐ देवीर्द्वारो ऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती ॥ प्राणं न व्वीर्य्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं व्वसुवने व्वसुधे-

यस्य व्यन्तु यज ॥ ॐ भू० भैरव्यै० भैरवीमा० ॥५॥ ॐ देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्द्धयन् ॥ श्रोत्रं न कर्ण्णयोर्य्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं व्वसुवने व्वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ॐ भू० वीरायै० वीरामा० ॥६॥ ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्ब्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्याम् ॥ अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्च्चसायाऽभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन व्वीर्य्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसे ऽभिषिञ्चामि ॥ ॐ भू० भयङ्कर्यै० भयङ्करीमा० ॥७॥ ॐ कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ॥ उपोपेन्नु मघवन्भूय ऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ॐ भू० वज्रधारिण्यै० वज्रधारिणीमा० ॥८॥ [इति चतुर्थाष्टकपङ्क्तिः ॥]

ॐ भद्रं कर्ण्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्य्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ ॐ भू० क्रोधायै० क्रोधामा० ॥१॥ ॐ इषे त्वोर्ज्जे त्वा व्वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्प्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मण

ऽआप्याय द्ध्वमग्न्या ऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरन-
मीवा ऽअयक्ष्मा मा वस्ते न ऽईशत माघशꣳसो
द्ध्रुवा ऽअस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीर्य्यजमानस्य
पशून्पाहि ॥ ॐ भू० दुर्मुख्यै० दुर्मुखीमा० ॥२॥ ॐ
देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राद्ध्यासं देव-
यजने पृथिव्या ॥ मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥
ॐ भू० प्रेतवाहिन्यै० प्रेतवाहिनीमा० ॥ ३ ॥
ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ॥
यद्भद्रं तन्न ऽआसुव ॥ ॐ भू० कर्कायै० कर्कामा०
॥४॥ ॐ असुन्न्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्या-
मन्विहि तस्करस्य ॥ अन्न्यमस्मदिच्छ सा त ऽइत्या
नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ॐ भू० दीर्घ-
लम्बोष्ठ्यै० दीर्घलम्बोष्ठीमा० ॥५॥ ॐ अग्निश्च
मे घर्म्मश्च मे ऽर्कश्च मे सूर्य्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमे-
धश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च
मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥
ॐ भू० मालिन्यै० मालिनीमा० ॥६॥ ॐ बह्वीनां
पिता बहुरस्य पुत्त्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ॥

इषुधिः सङ्गाः पृतनाश्च सर्व्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ॐ भू० मन्त्रयोगिन्यै० मन्त्रयोगिनीमा० ॥७॥ ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव ऽउतो त ऽइषवे नमः ॥ बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ ॐ भू० कालाग्निमोहिन्यै० कालाग्निमोहिनीमा० ॥८॥ [इति पञ्चमाष्टकपङ्क्तिः ॥]

ॐऋतञ्च मेऽमृतञ्च मेऽयक्ष्मञ्च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रञ्च मेऽभयञ्च मे सुखञ्च मे शयनञ्च मे सूषाश्च मे सुदिनञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ॐभू० मोहिन्यै० मोहिनीमा० ॥ १ ॥ ॐ ते ऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थे ॥ अप शत्रून् विद्ध्यताᳫँ सम्विदाने ऽआर्त्नी ऽइमे विष्फुरन्ती ऽअमित्रान्॥ ॐ भू० चक्रायै० चक्रामा० ॥२॥ ॐ वेद्या व्वेदिः समाप्यते बर्हिषाबर्हिरिन्द्रियम् ॥ यूपेन यूप ऽआप्यते प्रणीतो ऽअग्निरग्निना ॥ ॐ भू० कुण्डलिन्यै० कुणलिनीमा० ॥ ३ ॥ ॐ पावका नः सरस्वती व्वाजेभिर्व्वाजिनीवती ॥ यज्ञं व्वष्टु धिया व्वसुः ॥

ॐ भू० बालुकायै बालुकामा० ॥ ४ ॥ ॐ अस्क्कं न्नमद्य देवेब्भ्य ऽआज्ज्यꣳ संभ्भ्रियासमङ्घ्रिणा व्विष्ष्णो मा त्त्वावक्क्रमिषं व्वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्त्थेषं व्विष्ष्णो स्त्थानमसीत ऽइन्द्रो व्वीर्य्यमकृणोदूर्द्ध्वोऽ-द्ध्वर ऽआस्त्थात् ॥ॐ भू० कौबेर्यै० कौबेरीमा०॥५॥ ॐ तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्त्रंव्विब्भृता-मुपस्थे ॥ ऽअप शत्त्रून्व्विद्ध्यताꣳ सव्विदाने ऽआर्त्नी ऽइमे व्विष्ष्फुरन्ती ऽअमित्त्रान् ॥ ॐ भू० यमदूत्यै० यमदूतीमा० ॥ ६ ॥ ॐ मही द्यौःपृथिवी च न ऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम् ॥ पिपृतान्नो भरीमभिः ॥ ॐ भू० करालिन्यै० करालिनीमा० ॥ ७ ॥ ॐ उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनो-धाश्चनोधा ऽअसि च नो मयि धेहि ॥ जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ॐ भू० कौशिक्यै० कौशिकीमा० ॥ ८ ॥ [इति षष्ठाष्टक-पङ्क्तिः ॥]

ॐ आप्यायस्व समेतु ते व्विश्श्वतः सोम व्वृष्ण्यम् ॥ भवाव्वाजस्य सङ्गथे ॥ ॐ भू०

यक्षिण्यै० यक्षिणीमा० ॥१॥ ॐ काण्डिरसि समुद्द्रस्य त्त्वा क्षित्या ऽउन्नयामि ॥ समापो ऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ ॐ भू० भक्षिण्यै० भक्षिणीमा०॥२॥ ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् ॥ उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ॐ भू० कौमार्य्यै० कौमारीमा०॥३॥ ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्त्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ॥ इष्णन्निषाणामुं म ऽइषाण सर्व्वलोकं म ऽइषाण ॥ ॐ भू० मन्त्रवाहिन्यै० मन्त्रवाहिनीमा० ॥४॥ ॐ व्विष्णोरराटमसि व्विष्णोः श्नप्त्रे स्त्थो व्विष्णोः स्यूरसि व्विष्णोर्द्ध्रुवोऽसि ॥ व्वैष्णवमसि व्विष्णवे त्त्वा ॥ ॐ भू० विशालायै० विशालामा० ॥ ५ ॥ ॐ ब्राह्मणमद्य व्विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयं सधातुदक्षिणम् ॥ अस्म्मद्द्राता देवत्त्रा गच्छत प्रदातारमाविशत॥ ॐ भू० कामुक्यै० कामुकीमा० ॥६॥ ॐ आ व्याघ्रं व्विषूचिकोभौ व्वृकं च रक्षति॥

श्येनं पतत्त्रिण१ सिं१ हं१ सेमं पात्व१ हसः ॥ ॐ भू० व्याघ्र्यै० व्याघ्रीमा० ॥७॥ ॐ एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म ऽएकादश च म ऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म ऽएकवि१शतिश्च म ऽएकवि१शतिश्च मे त्रयोवि१शतिश्च मे त्रयोवि१-शतिश्च मे पञ्चवि१शतिश्च मे पञ्चवि१शतिश्च मे सप्तवि१शतिश्च मे सप्तवि१शतिश्च मे नववि१शतिश्च मे नववि१शतिश्च म ऽएकत्रि१शच्च म ऽएकत्रि१शच्च मे त्रयस्त्रि१शच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ॐ भू० महाराक्षस्यै० महाराक्षसीमा० ॥८॥ [इति सप्तमाष्टक-पङ्क्तिः ॥]

ॐ प्रेता जयता नर ऽइन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु ॥ उग्रा वः सन्तु बाहवो ऽनाधृष्या यथासथ ॥ ॐ भू० प्रेतभक्षिण्यै० प्रेतभक्षिणीमा० ॥१॥ ॐ असङ्-ख्याता सहस्राणि ये रुद्रा ऽअधि भूम्याम् ॥ तेषा१

सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ॐ भू० धूर्जट्यै० धूर्जटीमा० ॥२॥ ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ ॥ स्तोम ऽआत्मा छन्दाᳬस्यङ्गानि यजूᳬषि नाम ॥ साम ते तनूर्व्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ॐ भू० विकटायै० विकटामा० ॥३॥ ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ॥ तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ ॐ भू० घोररूपायै० घोर-रूपामा० ॥४॥ ॐ देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राद्ध्यास देवयजने पृथिव्याः मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ॐ भू० कपालिकायै० कपा-लिकामा० ॥५॥ ॐ इदं विष्णु० ॥ ॐ निकलायै० निकलामा० ॥६॥ ॐ व्वृष्ण ऽऊर्म्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा व्वृष्ण ऽऊर्म्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्र-ममुष्मै देहि व्वृषसे नोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा व्वृषसे नोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ॐ भू० अमलायै० अमलामा० ॥७॥ भायै दार्व्वाहारं

प्रभाया ऽअग्न्येधं ब्रध्नस्य व्विष्टपायाभिषेक्तारं व्वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्व्वेभ्यो लोकेभ्य ऽउपसेक्तारमव ऽऋत्यै व्वधायोपमन्थितारं मेधाय व्वासꣳ पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ ॐ भू० सिद्धिप्रदायै० सिद्धिप्रदामा० ॥८॥ [इति अष्टमाष्टकपङ्क्तिः ॥]

ईशाने—यज्ञायै० जयामा ॥ पूर्वे—विजयायै० विजयामा० ॥ आग्नेये—अजितायै० अजितामा० ॥ दक्षिणे—अपराजितायै० अपराजितामा० ॥ नैर्ऋत्ये—क्षेमकर्त्र्यै० क्षेमकर्त्रीमा० ॥ पश्चिमे--लक्ष्म्यै० लक्ष्मीमा० ॥ वायव्ये—वैष्णव्यै० वैष्णवीमा० ॥ उत्तरे—पार्वत्यै० पार्वतीमा ॥ इति योगिनीपूजनम् ॥

अथ क्षेत्रपालपूजन मन्त्राः—ॐ इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳ रक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ग्ने ॥ ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ॐ भू० अजराय० अजरामा० ॥१ ॐ प्रथमा वाꣳ सरथिना सुवर्ण्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि व्विश्वा ॥ अपिप्प्रयं चोदना वां मिमाना

होतारा ज्ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ॐ भू० व्यापकाख्याय० व्यापकाख्यमा ॥२॥ ॐ इन्द्रस्य व्वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि ॥ अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो ऽअर्ज्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ ॐ भू० इन्द्रचौराय० इन्द्रचौरमा० ॥३॥

ॐ एवेदिन्द्रं व्वृषणं व्वज्रबाहुं व्वसिष्ठासो ऽअभ्यर्च्चन्त्यर्क्कैः ॥ स न स्तुतो व्वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ॐ भू० इन्द्रमूर्तये० इन्द्रमूर्तिमा० ॥ ४ ॥ ॐ उक्षा समुद्रो ऽअरुणः सुपर्ण्णः पूर्व्वस्य योनिं पितुराविवेश ॥ मद्ध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा व्विचक्क्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ॐ भू० उक्षाभिधाय० उक्षाभिधमा० ॥ ५ ॥ ॐ यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा व्वयम् ॥ अग्निर्म्मा तस्मादेनसो व्विश्श्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ ॐ भू० कूष्माण्डाय० कूष्माण्डमा० ॥६॥ ॐ स न ऽइन्द्राय यज्ज्यवे व्वरुणाय मरुद्भ्यः ॥ व्वरिवोवित्परि स्रव॥ ॐ भू० वरुणाय० वरुणमा० ॥ ७ ॥ ॐ बाहू मे

बलमिन्द्रयꣳ हस्तौ मे कर्म्म व्वीर्य्यम् आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ॐ भू० बाहुकाख्याय० बाहुकाख्यमा० ॥ ८ ॥ ॐ मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो व्वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात्सर्व्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥ ॐ भू० विमुक्ताय० विमुक्तमा०॥९॥ ॐकुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः॥ एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥ ॐ भू०लिप्तकाय० लिप्तकमा० ॥१०॥ ॐसन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्द्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजाꣳसिव्वीर्य्येभिर्व्वीरतमा शविष्ठा ॥ या पत्त्येते ऽअप्रतीता सहोभिर्व्विष्णू ऽअगन्वरुणा पूर्व्वहूतौ ॥ ॐभू० लीलालोकाय० लीलालोकमा० ॥११॥ ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो नमो व्व्रातेभ्यो व्व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सेपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्विरूपेभ्यो व्विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ ॐभू० एकदंष्ट्राय०एकदंष्ट्रमा०॥१२॥ॐअर्म्मेभ्यो हस्तिपं जवाया श्वपंपुष्ट्यै गोपालं व्वीर्य्यायाविपालं

तजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्द्राय गृहपॐ श्रेयसे व्वित्तधमाद्ध्यक्ष्यायानुक्ष-त्तारम् ॥ॐ भू० ऐरावताख्याय० ऐरावताख्यमा०।१३। ॐ या ऽओषधीः पूर्व्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा॥ मनैनु बभ्रूणामहꣳशतं धामानि सप्त च ॥ ॐ भू० ओषधीघ्नाय० ओषधीघ्नमा० ॥१४॥ ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्० ॥ ॐ भू० बन्धनाख्यायः बन्धनाख्यमा० ॥१५॥ ॐ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ॥ दिव्यो गन्धर्व्वः केतपूः केतं नः पुनातु व्वाचस्पतिर्व्वाचं नः स्वदतु ॥ॐ भू० दिव्यकायाय० दिव्यकायमा० ॥ १६ ॥ ॐ सोसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऽऊर्णासूत्रेण कवयो व्वयन्ति ॥ अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं व्वरुणो भिषज्ज्यन् ॥ ॐ भू० कम्बलाख्याय० कम्बलाख्यमा० ॥१७॥ ॐ आशुः शिशानो व्वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ॥ सङ्कन्दनो निमिष ऽएकवीरः शतꣳ सेना ऽअजयत्साकमिन्द्रः॥ ॐ भू० क्षोभणाख्याय० क्षोभणाख्यमा० ॥ १८ ॥

ॐ इमᳩ साहस्रᳩ शतधारमुत्सं व्यच्यमानᳩ सरिरस्य मद्ध्ये ॥ घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ग्ने मा हिᳩसीः परमे व्व्योमन् ॥ गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्न्वानस्तन्न्वो निषीद ॥ गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ॐ भू० गवे० गवामा० ॥ १९ ॥ ॐ कुम्भो व्वनिष्ठुर्ज्जनिता शचीभिर्य्यस्मिन्नग्ग्रे योन्न्यां गब्भों ऽअन्तः ॥ प्लाशिर्व्यक्तः शतधार ऽउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥ ॐ भू० घण्टाभिधाय० घण्टाभिधमा० ॥२०॥ ॐ आ क्रन्दय बलमोजो न ऽआधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः ॥ अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना ऽइत ऽइन्द्रस्य मुष्टिरसि व्वीडयस्व ॥ ॐ भू० व्यालाय० व्यालमा० ॥२१॥ ॐ इन्द्रायाहि तूतुजान ऽउप ब्रह्माणि हरिवः ॥ सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ॐ भू० अणुस्वरूपाय० अणुस्वरूपमा० ॥२२॥ ॐ चन्द्रमा ऽअप्स्वन्तरा सुपर्ण्णो धावते दिवि ॥ रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहᳩ हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ॐ भू० चन्द्रवारुणाय० चन्द्रवारुणमा० ॥२३॥ ॐ प्रति-

श्रुत्काया ऽअर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायाडम्बराघातं महसे व्वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शंखध्मं व्वनाय व्वनपमन्न्यतोऽरण्याय दावपम् ॥ ॐ भू० फटाटोपाय० फटाटोपमा० ॥ २४ ॥ ॐ उग्ग्रँ लोहितेन मित्त्रꣳ सौव्रत्येन रुद्द्रं दौर्व्वत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साद्ध्यान् प्रमुदा ॥ भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्द्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्व्वस्य व्वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥ ॐ भू० जटालाय० जटालमा० ॥२५॥ ॐ पवित्त्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ॥ अग्ग्ने क्रत्वा क्रतूँ २॥ रनु ॥ ॐ भू० क्रतवे० क्रतुमा० ॥२६॥ ॐआजिघ्र कलशम्० ॐ भू० घण्टेश्वराय० घण्टेश्वरमा० ॥ २७ ॥ ॐ व्वायो शुक्रो ऽअयामि ते मद्ध्वो ऽअग्ग्रं दिविष्टिषु ॥ आयाहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ॐ भू० विटङ्काय० विटङ्कमा० ॥२८॥ ॐ दैव्व्या होतारा ऽऊर्द्ध्वमद्ध्वरं नोऽग्ग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ॥ कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ ॐ भू० मणिमतये० मणिमतिमा०

॥२९॥ ॐ त्रीणि त ऽआहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्य-प्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ॥ उतेव मे व्वरुणश्छन्त्स्य-र्व्वन्न्यत्रा त ऽआहुः परमं जनित्रम् ॥ ॐ भू० गणबन्धाय० गणबन्धमा० ॥३०॥ ॐ प्रतिश्रुत्काया ऽअर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकᳬ शब्दायाडम्बराघातं महसे व्वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं व्वनाय व्वनपमन्न्यतोऽ रण्याय दावपम् ॐभू० डामराय० डामरमा० ॥३१॥ ॐ शुद्धवालः सर्व्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽआ-श्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्ण्णा यामा ऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्ज्ज-न्याः ॥ॐभू० ढण्डिकर्णाय० ढुण्ढिकर्णमा० ॥३२॥ ॐव्वनस्पते व्वीड्वङ्गो हि भूया ऽअस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ॥ गोभिः सन्नद्धो ऽअसि व्वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्त्वानि ॥ भू० स्थविराय० स्थविरमा० ॥३३॥ सुपर्ण्णं व्वस्ते मृगो ऽअस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ॥ यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म्म यᳬसन् ॥ ॐभू० दन्तुराय०

दन्तुरमा० ॥३४॥ ॐ अग्ग्ने ऽअच्छा व्वदेह नः प्प्रति नः सुमना भव ॥ प्र नो यच्छ सहस्रजित् त्वꣳ हि धनदा ऽअसि स्वाहा ॥ ॐ भू० धनदाय० धनदमा० ॥३५॥ ॐ भद्रं कर्ण्णेभिः शृणुयाम० ॥ ॐ भू० नागकर्णाय० नागकर्णमा० । ३६ ॥ ॐ बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म्म व्वीर्य्यम् ॥ आत्मा क्षत्त्रमुरो मम ॥ ॐ भू० मारीगणाय० मारीगणमा० ॥ ३७ ॥ ॐ अपां फेनेन नमुचेः शिर ऽइन्द्रोद-वर्त्तयः ॥ व्विश्श्वा यदजय स्पृधः । ॐ भू० फेत्का-राय० फेत्कारमा० ॥३८॥ ॐ इदꣳ हविः प्प्रजननं मे ऽअस्तु दशवीरꣳ सर्व्वगणꣳ स्वस्तये ॥ आत्म-सनि प्प्रजासनि पशुसनि लोकसन्न्यभयसनि ॥ अग्निः प्प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो ऽअ-स्म्मासु धत्त ॥ ॐ भू० चीकराय० चीकरमा० ॥३९॥ ॐ या व्याग्घ्रं व्विषूचिकोभौ व्वृकं च रक्षति ॥ श्येनं पतत्त्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥ ॐ भू० सिंहाकृतये० सिंहाकृतिमा० ॥ ४० ॥ ॐ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत ऽआजगन्था परस्याः॥

सृकᳪ सᳪशाय पविमिन्द्र तिग्मं व्वि शत्रून् ताढि व्वि मृधो नुदस्व ॥ ॐ भू० मृगाय० मृगमा० ॥४१॥ ॐ इन्दुर्दक्षः श्येन ऽऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः । महान्त्सधस्थे ध्रुव ऽआ निषत्तो ऽनमस्ते ऽअस्तु मा मा हिᳪसीः ॥ ॐ भू० यक्ष्मप्रियाय० यक्ष्मप्रियमा० ॥ ४२ ॥ ॐ जीमूतस्येव भवति प्रतीकं व्वद्वर्म्मी याति समदामुपस्थे ॥ अनाविद्धया तन्न्वा जय त्वᳪ स त्वा व्वर्म्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥ ॐ भू० मेघवाहनाय० मेघवाहनमा० ॥ ४३ ॥ ॐ तीव्रान् घोषान् कृण्वते व्वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह व्वाजयन्तः ॥ अवक्क्रामन्तः प्रपदैरमित्त्रान्क्षिणन्ति शत्त्रूँ १ऽ रनपव्ययन्तः ॥ ॐ भू० तीक्ष्णोष्ट्राय० तीक्ष्णोष्ट्रमा० ॥ ४४ ॥ ॐ व्वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्ग्रीवश्छागैर्न्न्यग्ग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या ॥ एष स्य राथ्यो व्वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्माऽकृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥ ॐ भू० अनलाय० अनलमा० ॥४५॥ ॐ अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्म्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं व्विष्टम्भनीं दिशामधि-

पत्नीं भुवनानाम् ॥ ऊर्म्मिद्रप्सो ऽअपामसि व्विश्व-
कर्म्मा त ऽऋषिरश्विनाद्ध्वर्य्यू सादयतामिह त्वा ॥
ॐ भू० शुक्लतुण्डाय० शुक्लतुण्डमा० ॥ ४६ ॥
ॐ द्यौस्ते पृथिव्व्यन्तरिक्षं व्वायुश्छिद्रं पृणातु ते ॥
सूर्य्यस्से नक्षत्त्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥
ॐ भू० अन्तरिक्षाय० अन्तरिक्षमा० ॥ ४७ ॥
ॐ सं बर्हिरङ्क्ताᳪहविषा घृतेन समादित्यैर्व्वसुभिः
सम्मरुद्भिः ॥ समिन्द्रो व्विश्श्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं
नभो गच्छतु यत्स्वाहा ॥ ॐ भू० बर्बरकाय०
बर्बरकमा० ॥ ४८ ॥ ॐ पवमानः सो ऽअद्य नः
पवित्त्रेण व्विचर्षणिः ॥ यः पोता स पुनातु मा ॥
ॐ भू० पावनाय० पावनमा० ॥ ४९ ॥

॥ इति क्षेत्रपाल पूजनम् ॥

अथ कुशकण्डिकाविधिः ।

अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मणः स्थापनार्थं ब्रह्मासनम् ।
अग्नेरुत्तरतः प्रणीतासनद्वयम् । ब्रह्मासने ब्रह्मोपवेश-
नम् । 'यावत्कर्म समाप्यते तावत्त्वं ब्रह्मा भव' इति
यजमानः । 'भवामि' इति ब्रह्मा वदेत् । ब्रह्मणाऽनु-

ज्ञातः प्रणीताप्रणयनम् । प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य प्रथमासने निधाय ब्रह्मणो मुखमवलोक्य द्वितीयासने निदध्यात् । ततः परिस्तरणम् । अग्नेयादीशानान्तम् । ब्रह्मणोऽग्नि पर्यन्तं नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् । अग्नितः प्रणीता पर्यन्तम् । इतरथावृत्तिः । अथ पात्रासादनम् । अग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि त्रीणि पवित्रे द्वे । प्रोक्षणी पात्रम् । आज्यस्थाली । चरुस्थाली । सम्मार्जन-कुशाः पञ्च । उपयमनकुशाः सप्त । समिधस्तिस्रः । स्रुवः । गव्यमाज्यम् । तण्डुलाः । पूर्णपात्रम् । वृषनिष्क्रयदक्षिणा । उपकल्पनीयानि द्रव्याणि निधाय । अथ पवित्रकरणम्—द्वयोरुपरि त्रीणि निधाय । द्वौ मूलेन प्रदक्षिणी कृत्य । त्रिभिश्छिद्य । द्वौ ग्राह्यौ । त्रिस्त्याज्यः । [1]पवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय । अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां गृहीतपवित्राभ्यां त्रिरुत्पवनम् । प्रोक्षण्याः सव्यहस्त-करणम् । दक्षिणहस्तेन गृहीतपवित्रेण तिरुदिङ्ग-

१. उद्दिङ्गनं तु कर्तव्यमूर्ध्वं प्रमाणतः ।

नम् । प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणम् । प्रोक्षण्युदकेन आज्यस्थाल्याः प्रोक्षणम् । चरुस्थाल्याः प्रोक्षणम् । सम्मार्जनकुशानां प्रोक्षणम् । उपयमनकुशानां प्रोक्षणम् । समिधां प्रोक्षणम् । [1]स्रुवस्य प्रोक्षणम् । आज्यस्य प्रोक्षणम् । तण्डुलानां प्रोक्षणम् । पूर्णपात्रस्य प्रोक्षणम् । उपकल्पनीयानां पदार्थानां प्रोक्षणम् । [2]असञ्चरदेशे प्रोक्षणीं निधाय । आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः । चरुस्थाल्यां प्रणीतोदकासेकपूर्वकं तण्डुलप्रक्षेपः । ब्रह्मणो दक्षिणत आज्याधिश्रयणम् । चरोरधिश्रयणं स्वयमाज्यस्योत्तरतः । ज्वलदुल्मुकेनोभयोः पर्यग्निकरणम् । इतरथावृत्तिः । उदकोपस्पर्शः । अर्द्धश्रिते चरौ अधोमुखस्य स्रुवस्य प्रतपनम् । सम्मार्जनकुशैः स्रुवस्योर्ध्वमुखस्य सम्मार्जनम् । अग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं सम्मृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्षणम् । सम्मार्जनकुशानामग्नौ प्रक्षेपः । पुनः प्रतपनम् । अग्नेर्दक्षिणतो निधानम् । आज्यो-

१. अनेक स्रुवमासादने सर्वं सम्मार्जनं प्रोक्षणं च ।
२. प्रणीताग्न्योर्मध्ये असञ्चरदेशः । अर्थात् जनसञ्चारवर्जितदेशे ।

द्वासनम् । शृतं चरुं स्रुवेणाभिघार्य चरुं पूर्वेणा-नीयाऽग्नेरुत्तरतः स्थापयेत् । चरोरुद्वासनम् । अग्नेरुत्तरत एवाज्यस्य प्रदक्षिणीकृत्य आज्यस्यो-त्तरतश्चरुं स्थापयेत् । आज्योत्पवनम् । आज्यावेक्ष-णम् । अपद्रव्यनिरसनम् । पुन प्रोक्षण्युत्पवनम् । वामहस्ते उपयमनकुशानादाय, तिष्ठन् समिधोभ्या-धाय प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीं घृताक्ताः समिधस्तिस्रः अग्नौ क्षिपेत् । उपविश्य सपवित्र-करेण प्रोक्षण्युदकेन ईशानादारभ्य ईशानपर्यन्तं पर्युक्ष्य पवित्रे प्रणीतापात्रे निधाय दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्मणा कुशैरन्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ वायव्यकोणा-दारभ्याअग्निकोणपर्यन्तं प्राञ्चं वा सन्ततघृतधारया मनसा प्रजापतिं ध्यायन् स्रुवेण तूष्णीं जुहुयात् । नात्र स्वाहाकारः । अग्नेरुत्तरभागे—ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम । इति मनसा त्यजेत् । अग्नेर्दक्षिणभागे—ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम । इत्याघारौ । ॐ अग्नये स्वाहा. इदमग्नये न मम । ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम ।

इत्याज्यभागौ। ततो यजमानः हस्ते जलाक्षतं गृहीत्वा 'अस्मिन् अमुकयागकर्मणि इमानि उपकल्पितानि हवनीयद्रव्याणि विहितसंख्याहुतिपर्याप्तानि या या यक्ष्यमाणदेवतास्तास्ताभ्यो मया परित्यक्तानि न मम। यथा दैवतानि सन्तु। इति कुशकण्डिकाविधिः।

अथ ग्रहहोममन्त्राः।

ॐ गणानां त्वा० स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ अम्बे ऽअम्बिके० स्वाहा ॥ २ ॥ आ कृष्णेन० स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ इमं देवाः० स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ अग्निमूर्द्धाः० स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने० स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ बृहस्पते ऽअति० स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ अन्नात्परिस्रुतः० स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ शं नो देवीः० स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ कया नश्चित्रः० स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ केतुं कृण्वन्० स्वाहा ॥ ९ ॥

अथाधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-पञ्चलोकपालहोममन्त्राः।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ श्रीश्च ते० स्वाहा ॥२॥ ॐ यदक्रन्दः० स्वाहा

॥ ३ ॥ ॐ ष्णो ररराटमसि० स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ आ ब्रह्मन्० स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ सजोषा ऽइन्द्रः० स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ यमाय त्वा० स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ कार्षिरसि० स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ चित्रवसो स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ अग्निं दूतम्० स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ आपो हि ष्ठा० ॥ २ ॥ ॐ स्योना पृथिवि० स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ इदं विष्णुः० स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ इन्द्र ऽआसाम्० ॥५॥ ॐ अदित्यै रास्नासि० स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ प्रजापते न त्व० स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यः० स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ ब्रह्म ज्ञानम्० स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ गणानां त्वा० स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ अम्बे ऽअम्बिके० स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ व्यायो ये ते० स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ घृतं घृतपावानः० स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ यावां कशा० स्वाहा ॥ ५ ॥

अथ वास्तु-क्षेत्रपाल-दशदिक्पालहोममन्त्राः ।

ॐ वास्तोष्पते० स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ नहि स्पश० स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ त्रातारमिन्द्रम्० स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ त्वन्नोऽअग्ने तव देव० स्वाहा ॥ २ ॥

ॐ समास त्वा० स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ असुन्वन्तम्० स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ तत्त्वा यामि० स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ आनो नियुद्भिः० स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ व्वयꣳ सोम० स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ तमीशानम्० स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ अस्मे रुद्राः० स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ स्योना पृथिवि० स्वाहा ॥ १० ॥

अथ प्रधानहोमः ।

तत आचार्यः स्थापितदेवानां सकृत्सकृदाज्येन हुत्वा प्रधान देवस्य हवनं कुर्यात् । विष्णुश्चेत्प्रधानस्तदा 'ॐ इदं विष्णुः०' इति मन्त्रेण होमः कार्यः। शिवश्चेत्प्रधानस्तदा ॐ नमस्ते रुद्र०' इति मन्त्रेण होमः । अम्बिका चेत्प्रधाना तदा 'ॐ अम्बे ऽअम्बिकेऽम्बालिके०' इति मन्त्रेण होमः । एवं गणपत्यादिर्यः प्रधानदेवस्तस्य तन्मन्त्रेण होमः कार्यः ।

अथाग्निपूजनं स्विष्टकृद्धवनञ्च ।

यजमानः कृतस्य हवनफलसाफल्यतासिद्ध्यर्थं स्वाहास्वधायुतमग्निपूजनं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य ॐ अग्ने नय सुपथा राये ऽअस्मान्विश्वानि देव

व्वयुनानि विद्वान् । युयोद्ध्यस्म्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठ्ठां ते नम ऽउक्तिं विधेम ॥ ॐ स्वाहा स्वधायुताग्नये वैश्वानराय नमः' इति मन्त्रेणाग्निं सम्पूज्य ततो हुतशेषद्रव्यं वामहस्ते गृहीत्वा दक्षिण-हस्तेनाज्यपूर्णं स्रुवं गृहीत्वा दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्म-णाऽन्वारब्धः स्विष्टकृद्धवनं कुर्यात्। ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम। इति हुतशेषाऽऽज्यस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः। इति इति स्विष्टकृद्धवनम् ।

अथ भूरादिनवाहुतयः ।

ॐ भूः स्वाहा. इदमग्नये न मम ॥ १ ॥ ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम ॥ २ ॥ ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय न मम ॥३॥ ॐ त्वं नो ऽअग्ने व्वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो ऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठ्ठो व्वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्म्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥ ४ ॥ ॐ स त्वं नो ऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठ्ठो ऽअस्या ऽउषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो

व्वरुणꣳ रराणो व्वीहि मृडीकꣳ सुहवो न ऽएधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥५॥ ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया ऽअसि । अया नो यज्ञं व्वहास्यया नो धेहि भेषजꣳस्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे न मम ॥६॥ ॐ ये ते शतं व्वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा व्वितता महान्तः । तेभिर्न्नो ऽअद्य सवितोत विष्णुर्व्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ॥ ७ ॥ ॐ उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्मदवाधमं व्विमध्यमꣳ श्रथाय । अथा व्वयमादित्य व्व्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायादित्यायादितये च न मम ॥ ८ ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम ॥ ९ ॥ इति नवाहुतयः ।

अथ दशदिक्पालबलिः ।

अग्न्यायतनस्य प्राच्याम्—'ॐत्रातारमिन्द्रम्०' इति पठित्वा हस्ते जलाक्षत—पुष्पाण्यादाय ॐ इन्द्राय नमः । इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सश-

क्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि। भो इन्द्र! स्वां दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव। अनेन बलिदानेन इन्द्रः प्रीयताम् ॥ १ ॥ आग्नेय्याम्—ॐ त्वं नो ऽअग्ने०। ॐ अग्नये नमः। अग्नये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि। भो अग्ने! स्वां दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव। अनेन बलिदानेन अग्निः प्रीयताम् ॥२॥ दक्षिणे—ॐ यमाय त्वा०। ॐ यमाय नमः। यमाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि। भो यम! स्वां दिशंरक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव। अनेन बलिदानेन यमः प्रीयताम् ॥३॥ नैर्ऋत्याम्—ॐ असुन्वन्तमयज-

मान० । ॐ निर्ऋतये नमः । निर्ऋतये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि । भो निर्ऋते ! स्वां दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव । अनेन बलिदाने निर्ऋतिः प्रीयताम् ॥४॥ पश्चिमे ॐ तत्त्वा यामि० । वरुणाय नमः । ॐवरुणाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि । भो वरुण ! स्वां दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव । अनेन बलिदानेन वरुणः प्रीयताम् ॥५॥ वायव्याम्— ॐ आ नो नियुद्भिः० । ॐ वायवे नमः । वायवे साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि । भो वायो ! स्वां दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव । अनेन बलिदानेन वायुः प्रीयताम् ॥६॥

उत्तरे–ॐ वयᳬ सोम०। ॐ सोमाय नमः। सोमाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि। भो सोम! स्वां दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव। अनेन बलिदानेन सोमः प्रीयताम्॥ ७॥

ईशान्याम्–ॐ तमीशानम्०। ॐ ईशानाय नमः। ईशानाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि। भो ईशान! स्वां दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव। अनेन बलिदानेन ईशानः प्रीयताम्॥८॥ ईशानपूर्वयोर्मध्ये–ॐ अस्मे रुद्रा मेहना०। ॐ ब्रह्मणे नमः। ब्रह्मणे साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि। भो ब्रह्मन्! स्वां दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुः-

कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव। अनेन बलिदानेन ब्रह्मा प्रीयताम् ॥९॥ निर्ऋतिपश्चिमयोर्मध्ये-ॐ स्योना पृथिवि०। ॐ अनन्ताय नमः। अनन्ताय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधिमाषभक्तबलिं समर्पयामि०। भो अनन्त! स्वां दिशं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेम-कर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव। अनेन बलिदानेन अनन्तः प्रीयताम् ॥१०॥

अथ एकतन्त्रेण दशदिक्पालबलिः।

ॐ प्राच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहोर्द्ध्वायै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहा॥ इन्द्रादिभ्यो दशभ्यो दिक्पालेभ्यो नमः। इन्द्रादि-दशदिक्पालेभ्यः साङ्गेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः इमान् सदीपदधिमाषभक्तबलीन्

समर्पयामि । भो भो इन्द्रादिदशदिक्पालाः ! स्वां स्वां दिशं रक्षत बलिं भक्षत मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः पुष्टिकर्तारः तुष्टिकर्तारः वरदा भवत । अनेन बलिदानेन इन्द्रादिदशदिक्पालाः प्रीयन्ताम् । इति दशदिक्पालबलिः ।

अथ नवग्रहबलिः ।

ॐ आ कृष्णेन रजसा० । ॐ सूर्याय नमः । सूर्याय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय ईश्वराग्निरूपाधिदेवता-प्रत्यधिदेवतासहिताय इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि । भो सूर्य ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव । अनेन बलिदानेन सूर्यः प्रीयताम् ॥१॥ ॐ इमं देवाः० । ॐ सोमाय नमः । सोमाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय उमाऽऽपोरूपाधिदेवता-प्रत्यधिदेवतासहिताय इमं सदीप-दधि-माष भक्तबलिं समर्पयामि । भो सोम ! इमं बलिं

गृहाण मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव। अनेन बलिदानेन सोमः प्रीयताम् ॥२॥ ॐ अग्निर्म्मूर्द्धा०। ॐ भौमाय नमः। भौमाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय स्कन्द-भूमिरूपाधिदेवता-प्रत्यधिदेवतासहिताय इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि। भो भौम ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य०। अनेन बलिदानेन भौमः प्रीयताम् ॥३॥ ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने०। ॐ बुधाय नमः। बुधाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय नारायणविष्णुरूपाधिदेवता-प्रत्यधि-देवतासहिताय इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि। भो बुध ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य०। अनेन बलिदानेन बुधः प्रीयताम् ॥४॥ ॐ बृहस्पते ऽअति०। ॐ बृहस्पतये नमः। बृहस्पतये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय ब्रह्मेन्द्ररूपाधिदेवता-प्रत्यधिदेवतासहिताय इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि। भो बृहस्पते !

इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य० । अनेन बलिदानेन बृहस्पतिः प्रीयताम् ॥५॥ ॐ अन्नात्परिस्रुतः० । ॐ शुक्राय नमः । शुक्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इन्द्रेन्द्राणिरूपाधिदेवता-प्रत्यधिदेवतासहिताय इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि । भो शुक्र ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य० । अनेन बलिदानेन शुक्रः प्रीयताम् ॥६॥ ॐ शं नो देवीः० । ॐ शनैश्चराय नमः । शनैश्चराय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय यमप्रजापतिरूपाधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-सहिताय इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि । भो शनैश्चर ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य० । अनेन बलिदानेन शनैश्चरः प्रीयताम् ॥७॥ ॐ कयानश्चित्र:० । ॐ राहवे नमः । राहवे साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय कालसर्परूपाधिदेवता-प्रत्यधिदेवतासहिताय इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि । भो राहो ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य० । अनेन बलिदानेन राहुः

प्रीयताम् ॥८॥ ॐ केतुं कृण्वन्० । ॐ केतवे नमः केतवे साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय चित्रगुप्तब्रह्मरूपाधिदेवता-प्रत्यधिदेवतासहिताय इमं सदीपदधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि । भो केतो ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य० । अनेन बलिदानेन केतुः प्रीयताम् ॥९॥

अथ पञ्चलोकपालबलिः ।

ॐ गणानां त्वा० । ॐ गणपतये नमः गणपतये साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं सदीपदधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि । भो गणपते ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य० । अनेन बलिदानेन गणपतिः प्रीयताम् ॥१॥ ॐ अम्बेऽअम्बिके० । ॐ दुर्गायै नमः । भो दुर्गे ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्त्री क्षेमकर्त्री शान्तिकर्त्री पुष्टिकर्त्री तुष्टिकर्त्री वरदा भव । अनेन बलिदानेन दुर्गा प्रीयताम् ॥२॥ ॐ वायो ये ते० । ॐ वायवे नमः । वायवे साङ्गाय सपरिवाराय० । भो वायो ! इमं बलिं गृहाण मम

सकुटुम्बस्य०। अनेन बलिदानेन वायुः प्रीयताम् ॥३॥ ॐ घृतं घृत पावानः०। ॐआकाशाय नमः। आकाशाय साङ्गाय सपरिवाराय०। भो आकाश ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य०। अनेन बलिदानेन आकाशः प्रीयताम् ॥४॥ ॐ या वां कशा०। ॐ अश्विभ्यां नमः। अश्विभ्यां साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सायुधाभ्यां सशक्तिकाभ्याम् इमं सदीप-दधि-माष-भक्त-बलिं समर्पयामि। भो अश्विनौ ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्तारौ क्षेमकर्तारौ शान्तिकर्तारौ पुष्टिकर्तारौ तुष्टिकर्तारौ वरदौ भवतम्। अनेन बलिदानेन अश्विनौ प्रीयेताम् ॥५॥

अथ वास्तोष्पतिबलिः।

ॐ वास्तोष्पते प्रति०। ॐ वास्तोष्पतये नमः। वास्तोष्पतये साङ्गाय सपरिवाराय०! भो वास्तोष्पते ! इमं बलिं गृहाण मम सकुटुम्बस्य०। अनेन बलिदानेन वास्तोष्पतिः प्रीयताम्।

अथ एकतन्त्रेण नवग्रहबलिः।

ॐ ग्रहा ऽऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय

मतिम् । तेषां व्विशिप्रियाणां व्वोऽहमिषमूर्ज्जंठं समग्ग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येषते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ॐ सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः । सूर्यादिनवग्रहेभ्यः साङ्गेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता गणपत्यादिपञ्चलोकपालवास्तोष्पतिसहितेभ्यः इमं सदीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि । भो भो सूर्यादिनवग्रहाः ! साङ्गाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-गणपत्यादिपञ्चलोकपाल-वास्तोष्पतिसहिताः इमं बलिं गृह्णीत मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः पुष्टिकर्तारः तुष्टिकर्तारो वरदा भवत । अनेन बलिदानेन साङ्गाः सूर्यादिनवग्रहाः प्रीयन्ताम् ।

अथ क्षेत्रपालबलिदानविधि ।

यजमानः क्षेत्रपालाय एकस्मिन् वंशादिपात्रे शूर्पे च कुशानास्तीर्य तदुपरि मनुष्याहारच्चतुर्गुणं द्विगुणं वा हरिद्रा-कुङ्कुमसिन्दूर रक्तपुष्पादियुतं

ताम्बूलं सदक्षिणं माष-भक्त-दध्योदनं जलपात्रं च निधाय चतुर्मुखं दीपं प्रज्वलय्य बलिं दद्यात् । ॐ नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद् वैश्वानरात्पुर ऽएतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृता ऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥ इति क्षेत्रपालाय नमः" इत्युक्त्वा क्षेत्रपालं षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा सम्पूज्य प्रार्थयेत् । नमो वै क्षेत्रपालस्त्वं भूतप्रेत-गणैः सह । पूजां बलिं गृहाणेमं सौम्यो भव च सर्वदा ॥१॥ पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामाश्च देहि मे । आयुरारोग्यं मे देहि निर्विघ्नं कुरु सर्वदा ॥२॥ ततो बलिदानार्थं हस्ते जलं गृहीत्वा क्षेत्र पालाय सागाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय मरीगण-भैरव-राक्षस-कूष्माण्ड - वेताल - भूत - पिशाच डाकिनी-शाकिनी-पिशाचिनी-ब्रह्मराक्षस - गणसहिताय इम कुङ्कुम-रक्तपुष्पादियुतं सदीपं सताम्बूलं सदक्षिणं दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि । भोः क्षेत्र-पाल ! सर्वतो दिश रक्ष बलिं भक्त मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टि-

कर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव। अनेन बलिदानेन क्षेत्रपालः प्रीयताम्। बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा। मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगाः खगाः (नगाः) ॥१॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः। डाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥२॥ जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वाः सौम्या विद्याधरा नगाः। दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥३॥ जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः। मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः। सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूत-प्रेताः सुखावहाः ॥४॥ भूतानि यानीह वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्। अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु रक्षन्तु मां तानि सदैव चात्र ॥५॥

ततो दुर्ब्राह्मणेन नापितेन (शूद्रेण) वा क्षेत्र-पालबलिं गृहीत्वा यजमानपृष्ठतोऽनवेक्षमाणेन यज-मानमस्तकोपरि सकृद् भ्रामयित्वा बहिर्देशे चतुष्पथे निःक्षिपेत्। तत आचार्यः—ॐ हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा

प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा सꣳ हानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ इति मन्त्रेण यजमानमस्तकोपरि जलं प्रक्षिपेत्। इति क्षेत्रपालबलिदानविधिः ।

अथ पुर्णाहुतिः ।

यजमानः पाणिपादं प्रक्षाल्याचम्य प्राणानायम्य कुण्डाग्निसमीपमागत्योपविशेत् । पश्चात् सङ्कल्पं कुर्यात् । देशकालौ सङ्कीर्त्य ''गोत्रः शर्माऽहम् (वर्माऽहम्, गुप्तोऽहम्) कृतस्य अमुकामुकयागकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च मृडनामाग्नौ पूर्णाहुतिं होष्यामि' इति सङ्कल्प्य चतुः-षट्-द्वादशस्रुवेण च गृहीतमाज्यं स्रुच्यां कृत्वा तस्या उपरिरक्तवस्त्रावेष्टितं श्रीफलं (नारिकेलफलं) संस्थाप्य

ॐ पूर्ण्णादर्व्वि परापत सुपूर्ण्णा पुनरापत । व्वस्नेव व्विक्क्रीणावहा ऽइषमर्ज्जं शतक्रतो ॥ इति मन्त्रेण 'ॐ पूर्णाहुत्यै नमः' इति षोडशोपचारैः श्रीफलसहितं पूर्णाहुतिं सम्पूजयेत् । पश्चादधोमुख-स्रुवच्छन्नां श्रीफलसहितां स्रुचिमादाय उत्थाय पूर्णाहुतिं कुर्यात् । ॐ समुद्द्राद्दूर्म्मिर्म्मधुमाँ२ ॥ ऽउदार-दुपाऽशुना समम्मृतत्त्वमानट् । घृतस्य नाम गुह्यं स्यदस्ति जिह्वा देवानामम्मृतस्य नाभिः ॥१॥ व्वयं नाम प्रब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः । उप ब्रह्माशृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽव-मीद् गौर ऽएतत् ॥२॥ चत्त्वारि शृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो ऽअस्य । त्रिधा बद्धो व्वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२॥ ऽआविवेश ॥३॥ त्रिधा हितं पाणिभिर्गुह्यमान गवि देवासो घृतमन्न्वविन्दन् । इन्द्र ऽएकठं सूर्य्य ऽएकञ्ज-जान व्वेनादेकऽ स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ४ ॥ एता ऽअर्षन्ति हृद्यात्समुद्द्राच्छतव्व्रजा रिपुणा नाव-चक्षे । घृतस्य धारा ऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो

व्वेतसो मध्य ऽआसाम् ॥५॥ सम्म्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना ऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । एते ऽअर्षन्त्यूर्म्मयो घृतस्य मृगा ऽइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥ सिन्धोरिव प्राद्ध्वने शूघनासो व्वातप्प्रमियः पतयन्ति यह्वाः । घृतस्य धारा ऽअरुषो न व्वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्म्मिभिः पिन्न्वमानः ॥७॥ अभिप्प्रवन्त समनेव योषाः कल्ल्याण्ण्यः स्मयमानासो ऽअग्निम् । घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्य्यति जातवेदाः ॥८॥ कन्न्या ऽइव व्वहतुमेतवा ऽउ ऽअञ्ज्यञ्जाना ऽअभिचाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा ऽअभि तत्पवन्ते ॥ ९ ॥ अब्भ्यर्षत सुष्टुतिं गव्व्यमाजिमस्म्मासु भद्द्रा द्रविणानि धत्त । इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१०॥ धामन्ते व्विश्श्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्द्रे हृद्द्यन्तरायुषि । अपामनीके समिथे य ऽआभृतस्तमश्याम मधुमन्त त ऽऊर्म्मिम् ॥११॥ पुनस्त्वाऽऽदित्त्या रुद्द्रा व्वसवः समिन्धतां पुनर्ब्ब्रह्माणो

व्वसुनीथ यज्ञैः। घृतेन त्वं तन्न्वं व्वर्द्धयस्व सत्त्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥१२॥ मूर्द्धानं दिवो ऽअरतिं पृथिव्व्या व्वैश्वानरमृत ऽआ जातमग्निम्। कविᳬ सम्म्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्त्रं जनयन्त देवाः ॥१३॥ पूर्णा दर्व्वि परापत सुपूर्ण्णा पुनरापत। व्वस्न्नेव व्विक्क्रीणावहा ऽइषमूर्ज्जᳬ शतक्क्रतो स्वाहा ॥१४॥ इदमग्नये वैश्वानराय वसुरुद्रादित्येभ्यः शतक्रतवे सप्तवते अग्नयेऽद्भ्यश्च न मम' इति यजमानस्त्यजेत्। इति पूर्णाहुतिः।

अथ वसोर्द्धाराहोमः।

यजमानः सङ्कल्पं कुर्यात्। देशकालौ सङ्कीर्त्य "कृतस्यअमुकयागकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च वसोर्द्धारां होष्यामि' इति सङ्कल्प्य कुण्डोपरि वसोर्द्धारां प्रागग्रां निधाय तदुपरि घृतपूरितेन ताम्रादिपात्रधृतेनाधोयवमात्रच्छिद्रेणाज्यं विमुञ्चतोऽग्नेरुपरि वसोर्द्धारां पातयेत्। वसोर्द्धारायाः मुखं सुवर्णनिर्मितजिह्वां बध्नीयात्। तस्यां च घृतधारायां पतन्त्यां स्रुक्प्रणालिकयाग्नौ पतन्त्यां इमान्

मन्त्रान् पठेत् । ॐ सप्त ते ऽअग्ग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऽऋषयः सप्त धाम प्प्रियाणि । सप्त होत्त्राः सप्त धात्त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥ १ ॥ शुक्रज्ज्योतिश्च चित्त्रज्ज्योतिश्च सत्यज्ज्योतिश्च ज्ज्योतिष्मांश्च । शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यंहाः ॥ २ ॥ ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च । मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥ ३ ॥ ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च । धर्त्ता च व्विधर्त्ता च व्विधारयः ॥४॥ ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च । अन्तिमित्त्रश्च दूरे ऽअमित्त्रश्च गणः ॥ ५ ॥ ईदृक्षास ऽएतादृक्षास ऽऊषुणः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास ऽएतन । मितासश्च सम्मितासो नो ऽअद्य सभरसो मरुतो यज्ञे ऽअस्मिन् ॥ ६ ॥ स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च । क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥ ७ ॥ इन्द्रं दैवीर्व्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्व्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् । एवमिमं यजमानं दैवीश्च व्विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८ ॥ इमꣳ स्तनमूर्ज्ज-

स्वन्तं धयापां भीनमग्ग्ने सरिरस्य मद्ध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्व्वन्त्समुद्रियः सदनमाविशस्व ॥ ९ ॥ घृत मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितोघृतम्वस्य धाम। अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं व्वृषभ व्वक्षि हव्यम् ॥ १० ॥ व्वसोः पवित्त्रमसि शतधारं व्वसोः पवित्त्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु व्वसोः पवित्त्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः स्वाहा ॥११। इदमग्नये वैश्वानराय न मम। इति वसोर्द्धाराहोमः।

अथाग्नेः प्रदक्षिणम्।

यजमानः—ॐ अग्ने नय सुपथा राये ऽअस्मान् व्विश्श्वानि देव व्वयुनानि व्विद्वान्। युयोद्ध्युस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम ऽउक्तिं व्विधेम॥ इत्यनेन मन्त्रेणाग्निं परिक्रम्य अग्नेः पश्चिमदिशि प्राङ्मुख उपविशेत्।

अथ हवनीयकुण्डभस्मधारणम्।

तत आचार्यः हवनकुण्डस्य स्थण्डिलस्य वा ईशानकोणात् स्रुवेण भस्मानीय प्रथमं स्वशरीरे ततो

यजमान शरीरे च भस्मानुलेपन कुर्यात्। 'ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः' इति ललाटे। कश्यपस्य त्र्यायुषम्' इति ग्रीवायाम्। 'यद्देवेषु त्र्यायुषम्' इति दक्षिणबाहुमूले। तन्नो ऽअस्तु त्र्यायुषम्' इति हृदि। ततः प्रोक्षणीपात्रस्थितस्याज्यस्य यजमानेन प्राशनमवघ्राणं वा कार्यमिति संस्रवप्राशनम्। तत आचमनम्। पवित्राभ्यां मार्जनम्। अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः।

यज्ञाचार्य हवन कुण्ड के अथवा स्थण्डिल के ईशान कोण से स्त्रुवे से भष्म लाकर पहले अपने तथा बाद में यजमानके शरीर में भष्म लगावें यजमान पत्नी केवल कण्ठ में ही भष्म लगावें।

अथ ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम्।

भष्म धारण करने के वाद यजमान ब्रह्मा को पूर्ण पात्र देने के लिये संकल्प करें।

यजमानः ब्रह्मणे पूर्णपात्रप्रदानार्थं सङ्कल्पं कुर्यात्। देशकालौ सङ्कीर्त्य "गोत्रः शर्माऽहम् (वर्माऽहम् गुप्तोऽहम्) कृतस्य अमुकयागकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च इदं पूर्णपात्रं सदक्षिणं ब्रह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददे" इत्युक्त्वा ब्रह्मणे पूर्णपात्रं दद्यात्। पूर्णपात्रग्रहणानन्तरं 'ॐ द्यौस्त्वा

ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु' इति ब्रह्मा वदेत्। ततः प्रणीतापात्रं पश्चादानीय निनयेत्। अग्नेः पश्चात् प्रणीताविमोकः। 'ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्ते कृण्वन्तु भेषजम्' इत्यनेन यजमानमुपयमनकुशैर्मार्जयेत्। तत उपयमनकुशानामग्नौ प्रक्षेपः। ब्रह्मग्रन्थिविमोकः।

अथ श्रेयोदानम्।

अथाचार्यः यजमानाय श्रेयोदानं दद्यात्। आचार्यः 'कृतस्य अमुकयागकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं फलप्राप्त्यर्थं च यजमानाय श्रेयोदानं करिष्ये" इति सङ्कल्प्य 'शिवा आपः सन्तु' इति यजमानदक्षिणहस्ते जलं दद्यात्। 'सौमनस्यमस्तु' इति पुष्पं दद्यात्। 'अक्षतं चारिष्टं चास्तु' इति अक्षतान् दद्यात्। तत आचार्यः हस्ते जलाक्षतपूगीफलमादाय "भवन्नियोगेन मया अस्मिन् ग्रहशान्तिकर्मणि यत्कृतम् आचार्यत्वं तथा च एभिर्ब्रह्मगाणपत्य-सदस्योपद्रष्ट्-जापकादिभिर्ब्राह्मणैः सह यत्कृतं जप-हवनादिकं च तेनोत्पन्नं यच्छ्रेयस्तत् साक्षतेन सजलेन

पूंगीफलेन तुभ्यमहं सम्प्रददे. तेन श्रेयसा त्वं श्रेयस्वान् भव" इत्युक्त्वा यजमानाय फलादिकं दद्यात् ।
'भवामि' इति यजमानो ब्रूयात्

अथाचार्यादिभ्यो दक्षिणादानम् ।

ततो यजमानः आचार्यादिभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणाप्रदानार्थं सङ्कल्पं कुर्यात् । यजमानः देशकालौ सङ्कीर्त्य "गोत्रः शर्माऽहम् (वर्माऽहम् ,गुप्तोऽहम्) कृतस्य अमुकयागकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च आचार्यादिभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विभज्य मनसोद्दिष्टां दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये" इति सङ्कल्प्य, आचार्याय गां दद्यात् । ब्रह्मणे वृषभम् । गाणपत्याय रथम् । सदस्याय अश्वम् । उपद्रष्ट्रे गन्त्रीम् (पालकीम्) । जप-हवनादिकर्तृभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सुवर्णं दद्यात् ।

अथ गोदानादिसङ्कल्पः ।

देशकालौ सङ्कीर्त्य "अमुकगोत्रः अमुकशर्माऽहम् (अमुकवर्माऽहम्, अमुकगुप्तोऽहम्) कृतस्य अमुक योग कर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफल-

प्राप्त्यर्थमिदं गोनिष्क्रय भूतं द्रव्यममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय आचार्याय तुभ्यमहं सम्प्रददे"। एवमेव ब्रह्म-गाणपत्य-सदस्योपद्रष्टृ-ऋत्विजेभ्यः वृष-रथाश्व-गन्त्री-सुवर्णादिनिष्क्रयभूतं द्रव्यम् पृथ -पृथक् दद्यात्।

अथ भूयसीदक्षिणासङ्कल्पः।

यजमानः देशकालौ सङ्कीर्त्य "कृतेऽस्मिन् अमुकयागकर्मणि न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं नानानामगोत्रेभ्यो नानाशर्मब्राह्मणेभ्यः दीनानाथेभ्यश्च यथाशक्ति भूयसीं दक्षिणां विभज्य दातुमहमुत्सृज्ये" इति सङ्कल्प्य ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दद्यात्।

अथ ब्राह्मणभोजनसङ्कल्पः।

यजमान देशकालौ सङ्कीर्त्य "कृतस्य अमुकयागकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च यथासङ्ख्याकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये" (भोजयिष्यामि)।

अथोत्तरपूजनम्।

ततो यजमानः 'कृतस्य अमुकयाग कर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं चावाहितदेवा-

नामुत्तरपूजनं करिष्ये" इतिसङ्कल्प्य 'गणपत्याद्यावाहितदेवेभ्यो नमः' इति प्रधान पीठादिदेवतानां (ग्रहपीठादिदेवतानां) षोडशोपचारैरुत्तरपूजनं कुर्यात्। पश्चादारार्तिक्यं विधाय मन्त्रपुष्पाञ्जलिं कुर्यात्। इत्युत्तरपूजनम्।

अथ प्रधानपीठादिदानम्।

यजमानः सङ्कल्पं कुर्यात्। 'कृतस्य अमुकयागकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं इमानि सोपस्करसहितानि प्रधानपीठादीनि आचार्याय तुभ्यमहं सम्प्रददे" इति सङ्कल्प्य प्रधानपीठादिकमाचार्याय दद्यात्।

यथाभिषेकः।

तत आचार्यः स्थापितयोः रुद्रकलश-प्रधानकलशयोर्जलमेकस्मिन् पात्रे एकीकृत्य तज्जलेन दूर्वाकुशा-पञ्चपल्लवैः प्राङ्मुखं सपरिवारं यजमानमभिषिञ्चेत्। तत्राभिषेकमन्त्राः—ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा

साम्राज्ज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ १ ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्ज्येनाभिषिञ्चामि ॥ २ ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्ज्येन तेजसे ब्रह्मवर्च्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्ज्येन वीर्य्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि ॥ ३ ॥

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्ण-महेश्वराः ।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ॥१॥
प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धश्च भवन्तु विजयायते ।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा॥२॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।
ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥ ३ ॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः कान्तिस्तुष्टिश्च मातरः॥ ४॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः ।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुध-जीव-सिताऽर्कजाः॥ ५॥

ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।
देव-दानव-गन्धर्वा यक्ष-राक्षस-पन्नगाः ॥ ६ ॥
ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ।
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाऽप्सरसां गणाः ॥ ७ ॥
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥ ८ ॥
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ॥ ९ ॥

अमृताभिषेकोऽस्तु । शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्त्वित्यभिषेकः ।

अथ घृतच्छायापात्रदानम् ।

यजमानः घृतपूरितकांस्यपात्रे मुखावलोकनार्थं सङ्कल्पं कुर्यात् । देशकालौ सङ्कीर्त्य "गोत्रः शर्माऽहम् (वर्माऽहम्, गुप्तोऽहम्) कृतस्य अमुकयागकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं सर्वारिष्टविनाशार्थं चाज्यावेक्षणं करिष्ये" ।

ॐ रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा

व्वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥
इति मन्त्रमुक्त्वा आज्यावेक्षणं कुर्यात्। ततो
ब्राह्मणाय आज्यपात्रप्रदानार्थं सङ्कल्पं कुर्यात्।
देशकालौ सङ्कीर्त्य 'अमुकगोत्र अमुकशर्माऽहम्
(अमुकवर्माऽहम्, अमुकगुप्तोऽहम्) इदमवलोकित-
माज्यं कांस्यपात्रस्थितं सहुवर्णं सदक्षिणाकं मृत्युञ्ज-
यदैवतं मृत्युञ्जयदेवताप्रीतये सर्वारिष्टविनाशार्थं
चामुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे"
इति ब्राह्मणाय आज्यपात्रं दद्यात्। ब्राह्मणश्च
आज्यपात्रं गृहीत्वा स्वस्ति' इति यजमानायाशिषं
दद्यात्। इति घृतच्छायापात्रदानम्।

अथ क्षमापनम्।

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥१॥ मन्त्रहीनं
क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर। यत्पूजितं मया देव
परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२॥ जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं
यच्छिद्रं शान्तिकर्मणि। सर्वं भवतु मेऽच्छिद्रं
ब्राह्मणानां प्रसादतः ॥३॥ अपराधसहस्राणि क्रियन्ते-

ऽहर्निशं मया। दासोऽयमिति मां मत्त्वा क्षमस्व परमेश्वर ॥४॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्न्यूनमधिकं कृतम्। तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥५॥ कर्मणा मनसा वाचा विष्णुयाग घृतामया। तेन तुष्टिं समासाद्य प्रसीद परमेश्वर ॥६॥

अथ स्थापित देवानां विसर्जनम्।

यजमानः देशकालौ सङ्कीर्त्य "गोत्रः शर्माऽहम् (वर्माऽहम्, गुप्तोऽहम्) अमुकयागकर्माङ्गत्वेन स्थापितानां नवग्रहादिमण्डलदेवतानामुत्थापनं करिष्ये" इति सङ्कल्य स्थापितदेवानग्निं च सानुनय पुष्पाक्षतैर्विसृजेत्। ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव ऽइन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥१॥ ॐ यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा। एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्व्ववीरस्त जुषस्व स्वाहा ॥२॥ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामिकाम्। इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥१॥ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थानं परमेश्वर।

यत्र ब्रह्मादयो देवा तत्र गच्छ हुताशन ॥२॥
प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥३॥
यस्य स्मृत्या च नमोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥४॥
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः ॥५॥ 'अनेन यथाशक्तिकृतेन अमुक यागकर्मणा श्रीपापापहा महाविष्णुः प्रीयताम्" इति यत् कृतं मयाकर्म ईश्वरार्पणं कुर्यात्। यजमानः—ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः। इति त्रिर्वदेत्।

अथ यजमानरक्षाबन्धनमन्त्रः।

ॐ यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्य मानाः। तन्म ऽआ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ इति मन्त्रेण यजमानस्य दक्षिणहस्ते कङ्कणबन्धनं कुर्यात्।

अथ यजमानपत्नीरक्षाबन्धनमन्त्रः ।

ॐ तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्त्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः । नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे ऽअधि रोचने दिवः ॥ इति मन्त्रेण यजमानपत्न्याः वामहस्ते कङ्कणबन्धनं कुर्यात् ।

अथ याजमानायतिलकाशिर्वादः ।

ॐ स्वस्ति न ऽइन्द्रो व्वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा व्विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्द्दधातु ॥ १ ॥ ॐ पुनस्त्वाऽऽदित्त्या रुद्द्रा व्वसवः समिन्धतां पुनर्ब्ब्रह्माणो व्वसुनीथ यज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं व्वर्द्धयस्व सत्त्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ २ ॥ श्रीवर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते । धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥ १ ॥ शान्तिरस्तु शिवं चास्तु शुभं चास्तु धनं तथा । ऋद्धिरस्तु वृद्धिरस्तु ब्राह्मणानां प्रसादतः ॥ १ ॥ अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः । निर्धनाः

सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ॥ २ ॥
मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ॥ ३ ॥

अथ यजमानपत्न्याआशिर्वादः ।

ॐ अनाघृष्ट्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य ऽआयुर्म्मे दाः पुत्रवती दक्षिणत ऽइन्द्रस्याधिपत्त्ये प्रजां मे दाः सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितु राधिपत्त्ये चक्षुर्म्मे दा ऽआश्रुतिरुत्तरत्तो धातुराधिपत्त्ये रायस्पोषं मे दाः ॥ व्विधृतिरुपरिष्ट्टाद् बृहस्पतेराधिपत्त्य ऽओजो मे दा व्विश्श्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥ तत आचार्यः यजमानाय प्रसादार्पणं कुर्यादिति शिवम् । ॥ इति यज्ञ कर्म पद्धतिः ॥

याज्ञिक सम्राट स्व० पण्डित श्री वेणीरामजी शर्मा गौड वेदाचार्य के पुत्र याज्ञिक पण्डित श्री उमेशमिश्र गौड वेदाचार्य निर्मित यज्ञ कर्म पद्धतिः समाप्त ।

卐

यज्ञ की संक्षिप्त अनुक्रमणिका

नित्यकर्म विधायैव प्राश्चित्तं समाचरेत् ।
गणेशं पूजयेदादौ स्वस्तिवाचन पूर्वकम् ।।
मातृणां पूजनं कार्यं नान्दीश्राद्धमतःपरम् ।
आचार्यमथ वृत्वैव ब्रह्माणं गाणपत्यकम् ।।
सदस्यमुपद्रष्टारमृत्विजो वृणुयात्ततः ।
प्रवेशनं मण्डपस्य तावद् दिग्रक्षणं पुनः ।।
ततो मण्डपपूजादि ग्रहादिस्थापनं ततः ।
देवताग्रहहोमं च पूर्वाङ्गं इति कथ्यये ।।
पूजास्विष्टं नावाहुत्यो बलिः पूर्णाहुतिस्तथा ।
संस्त्रवादि विमोकान्तं होम शेषं समापयेत् ।।
पूर्णपात्रादिदानं च गोदानं च ततः परम् ।
श्रेयो मण्डपदानानि ह्यभिषेको विसर्जनम् ।।
विप्रेभ्यो दक्षिणांदत्वा भोजयेद् विधिपूर्वकम् ।
शुभाशीर्ग्रहणं कुर्यादुत्तराङ्गक्रमो ह्ययम् ।।

—: ० :—

परिशिष्ट

स्मार्त्त यज्ञों का संक्षिप्त परिचय

॥ रुद्रयाग ॥

रुद्रयाग को साङ्गोपाङ्ग सम्पादन करने के लिये सर्वप्रथम उपवास और सर्व प्रायश्चित्त करे। पश्चात् पञ्चाङ्ग और आचार्यादि वरण के बाद यजमान अपने परिवार के साथ वाद्ययन्त्रों सहित पश्चिम द्वार से यज्ञमण्डप में प्रवेश करे। अनन्तर आचार्य द्वारा दिग्रक्षण, मण्डपप्रोक्षण, वास्तुपूजन, मण्डपपूजन न्यासपूर्वक प्रधान-पूजन, क्षेत्रपालपूजन, अरणिमन्थन, अरणिपूजन, पंचभूसंस्कार पूर्वक अग्निस्थापन, कुशकण्डिका, ग्रहपूजन, आघार-आज्यभागत्याग, ग्रहहवन, महान्यास और प्रधान का रुद्रसूक्त से हवन। मण्डपपूजन और प्रधान को आहुति पूर्णाहुति पर्यन्त प्रतिदिन करे। प्रधान आहुति पूर्ण होने के बाद "शिवसहस्त्रनामा वलि" से हवन करे। पश्चात् आवाहित देवताओं का वैदिकमन्त्र से अथवा नाममन्त्र से हवन करे। अनन्तर अग्निपूजन' स्विष्टकृत्, नवाहुति दशदिक्पा-लादि बलि, पूर्णाहुति और वसोर्धारा निपातन करे।

पश्चात् त्र्यायुष और पूर्णपात्रदान करे। अनन्तर शय्यादान, प्रधानपीठ और मण्डप का सकल्प करे। पश्चात् भूयसी दक्षिणा और कर्माङ्ग गोदान करे। फिर अभिषेक, अवभृथस्नान ब्राह्मणों को दक्षिणा दे। फिर देवताओं का विसर्ज और ब्राह्मणभोजन करावे।

रुद्रयाग का प्रकार

रुद्रयाग तीन प्रकार के होते हैं—रुद्र, महारुद्र, और अतिरुद्र। रुद्रयाग ५, ७ अथवा ९ दिन में होता है। महारुद्रयाग ९ दिन में अथवा ११ दिन में होता है। अतिरुद्रयाग ९ दिन में अथवा ११ दिन में होता है।

१—रुद्रयाग मे १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं।

२—महारुद्रयाग में ३१ अथवा ४१ विद्वान होते हैं।

३—अतिरुद्रयाग में ६१ अथवा ७१ विद्वान होते हैं। रुद्रयाग में उन्नीस हजार नव सौ एक्कीस (१९९२१) आहुती होती है।

महारुद्रयाग में दो लाख उन्नीस हजार एक सौ इकतीस (२१९१३१) आहुति होतो है।

अतिरुद्रयाग में चौबीसलाख दसहजार चार सौ इकतालोस (२४१०४४१) आहुति होती है।

लघुरुद्रयाग में ११ मन, हवनसामग्री लगती है। महारुद्र याग में २१ मन हवन सामग्री लगती है। और अति रुद्रयाग में ७० मन हवन सामग्री लगती है।

विष्णुयाग

विष्णुयाग भो तीन प्रकार का होता है—विष्णु, महाविष्णु, और अतिविष्णु। विष्णुयाग ५, ७, ८ अथवा ९ दिन में होता है। महाविष्णुयाग ९ दिन में होता है। अतिविष्णुयाग ९ दिन में अथवा ११ दिन में होता है। विष्णुयाग में १६ अथवा २१ विद्वान् होतें हैं। महाविष्णुयाग में ३१ अथवा ४१ विद्वान् होतें हैं। अतिविष्णुयाग में ६१ अथवा ७१ विद्वान् होते हैं।

विष्णुयाग में ११ मन हवनसामग्रो, महाविष्णु में २१ मन और अतिविष्णयाग में ५५ मन सामग्रो लगती है।

अनन्तदेवकृत विष्णुयाग पद्धति के अनुसार विष्णुयाग में सोलह हजार (१६०००) आहुति होती है। महाविष्णुयाग में (१६००००) एक लाख साठ हजार आहुति होती है। अतिविष्णुयाग में (३२००००) तीन लाखबीस हजार आहुति होती है।

नागरकृत विष्णुयाग पद्धति के अनुसार क्रमशः विष्णुयाग में एक लाख साठ हजार, महाविष्णुयाग में तीनलाखबीसहजार, अतिविष्णुयाग में चारलाख सस्सीहजार आहुतियाँ हैं।

आधुनिक विद्वानों की मुद्रित पद्धतियों के अनुसार विष्णुयाग में सोलह हजार, महाविष्णु में एक लाख साठ हजार, अतिविष्णुयाग में तीन लाख बीस हजार आहुतियाँ हैं।

विष्ण याग में (यजुर्वेद के ३१वें अध्याय के प्रारम्भ के १६ मन्त्र) पुरुष सूक्त से हवन होता है।

"हरिहर महायज्ञ"

हरिहर याग में हरि (विष्ण) और हर (शिव) इन दोनों का यज्ञ होता है। प्रातः विष्णुयज्ञ और मध्यान्ह में रुद्रयज्ञ होता है। प्रातः "पुरुष सूक्त" से तथा मध्यान्ह में "रुद्र सूक्त" से आहुति होती है। हरिहर महायज्ञ में १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। हरिहरयाग में रुद्रयाग और विष्णुयाग की तरह आहुति संख्या कही गई है। हरिहरयाग में २५ मन हवन सामग्री लगती है। यह महायज्ञ ९ दिन अथवा ११ दिन में होता है।

"शिवशक्ति-महायज्ञ"

शिवशक्ति महायज्ञ में शिव (रुद्र यज्ञ) और शक्ति (दुर्गा) इन दोनों का यज्ञ होता है। शिव यज्ञ प्रातःकाल और शक्ति यज्ञ (दुर्गा-यज्ञ) मध्याम्ह में होता है। शिव यज्ञ में शुक्ल यजुर्वेद के पाँचवें अध्याय से हवन होता है। शक्तियज्ञ मेंसम्पूर्ण दुर्गा से हवन होता है।

शिव यज्ञ एवं शक्तियज्ञ इन दोनों की आहुति संख्या एक लाख पचीस हजार (१२५०००) कही गई हैं। इसमें हवन सामग्री १५ मन लगती है। शिव शक्ति महायज्ञ में हवन करनेवाले २१ विद्वान् होते हैं। यह महायज्ञ ९ दिन अथवा ११ दिन में सम्पन्न होता है।

राम-यज्ञ

रामयज्ञ विष्णुयाग की तरह होता है। इसमें सर्वतोभद्र, अथवा रामभद्र बनाकर पुरुष सूक्त से अथवा 'ॐ रां रामाय नमः' इस षडक्षर मन्त्र से आहुति होती है। प्रतिदिन अथवा पूर्णाहुति के दिन

'रामसहस्रनामावली' से हवन करना चाहिये। रामयज्ञ में १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। इसमें हवन सामग्री १५ मन लगती है। यह यज्ञ ८ दिन में पूर्ण होता है राम यज्ञ में एक लाख १०००००) अथवा एक लाख साठ हजार (१६००००) आहुति होती है।

गणेश-यज्ञ

गणेश यज्ञ में शुक्ल यजुर्वेद के ३३ वें अध्याय के ६५ वें मन्त्र से ७२ मन्त्र तक आठ मन्त्रों से आहुति होती हैं। प्रतिदिन अथवा पूर्णाहुति के दिन 'गणेश सहस्त्रनाम' से हवन करना चाहिये। गणेश यज्ञ में एक लाख (१०००००) आहुति होती है। इसमें १६ अथवा २१ विद्वान् होते हैं। गणेश यज्ञ में हवन सामग्री ११ मन लगती है। यह यज्ञ आठ ८ दिन में पूर्ण होता है।

दुर्गा-यज्ञ

दुर्गा यज्ञ में 'दुर्गासप्तशती' के द्वारा हवन होता है। प्रतिदिन अर्थात् पूर्णाहुति के दिन 'दुर्गासहस्त्र नामावली' (देवी सहस्त्र नामावली) से हवन करना चाहिये। दुर्गा यज्ञ में हवन करने वाले ९ विद्वान् होते हैं। आचार्य, ब्रह्मा, द्वारपालादि मिलाकर १६ अथवा २१ विद्वान् होतें हैं। यह यज्ञ ९ दिन में होता है। दुर्गा यज्ञ में २० मन अथवा १५ मन हवन सामग्री लगती है।

लक्ष्मी-यज्ञ

लक्ष्मी यज्ञ में ऋग्वेदोक्त परिशिष्ट 'श्रीसूक्त' से हवन होता है प्रतिदिन अथवा यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन 'लक्ष्मी सहस्त्रनामावली' से हवन करना चाहिये। लक्ष्मीं यज्ञ में एक लक्ष (१०००००) आहुति होतीं है। इसमें हवन करने वाले ११ अथवा १६ विद्वान् होतें हैं। आचार्य ब्रह्मादि मिलाकर २१ विद्वान् होने चाहिये। यह यज्ञ ८ दिन पूर्ण में होता है। लक्ष्मी यज्ञ में हवन सामग्री १५ मन लगती है।

लक्ष्मीनारायण महायज्ञ

लक्ष्मी नानायण महायज्ञ में लक्ष्मी और नारायज्ञ (विष्णु) इन दोनों का यज्ञ होता है। प्रातः लक्ष्मी यज्ञ और मध्यान्ह में नारायण (विष्णु) का यज्ञ होता है। नारायण में "पुरुष सूक्त" से तथा लक्ष्मी यज्ञ में "श्रीसूक्त" से हवन होता है। लक्ष्मी तथा नारायण इन दोनों की आहुति संख्या १ लाख साठ हजार (१६००००) अथवा एक लाख पचीस हजार (१२५०००) कही गई है। इसमें ३० मन हवन सामग्री लगती है। इस यज्ञ में हवन करने वाले ३१ विद्वान् होते हैं। यह यज्ञ ८ दिन अथवा ९ दिन में अथवा ११ दिन में सम्पन्न होता है।

नवग्रह-महायज्ञ

नवग्रह महायज्ञ में नवग्रह और नवग्रह के अधिदेवता तथा प्रत्यधिदेवता के सहित देवताओं के लिये शु० य० वे० आकृष्णेण रजसा' इत्यादि २७ मन्त्रों से आहुति होती है। नवग्रह महायज्ञ में एक करोड़ (१०००००००) आहुति अथवा एक लक्ष (१०००००) आहुति अथवा दस हजार (१००००) आहुति होती है। इसमें कम से कम ३१ अथवा ४१ विद्वान् होते हैं। इसमें ११ मन हवन सामग्री लगती है।

कोटि होमात्मक नवग्रह महायज्ञ में हवन सामग्री विशेष लगती है। नवग्रह महायज्ञ ९ दिन में पूर्ण होता है उसमें १, ५, ९ और १०० कुण्ड होते हैं। नवग्रह महायज्ञ में नवग्रह के आकार के ९ कुण्डों के बनाने का भी विधान है।

"विश्वशान्ति महायज्ञ"

इस यज्ञ में शुक्ल यजुर्वेद के ३६ वें अध्याय के सम्पूर्ण मन्त्रों से आहुति होती है। विश्वशान्ति महायज्ञ में सवा लक्ष। (१२५०००) आहुति होती है। इसमें २१ अथवा ३१ विद्वान् होते हैं। इसमें हवन

सामग्री १५ मन लगती है। यह महायज्ञ ९ दिन अथवा ११ दिन में सम्पन्न होता है।

गायत्री महायज्ञ

गायत्री महायज्ञ में गायत्री मन्त्र से आहुति होतो है। पूर्णाहुति के दिन 'गायत्री सहस्त्रनामावलि' से हवन करना चाहिये। इस महायज्ञ में २४ लाख २४०००००) आहुति होतो है। चौबीस लाख आहुतियों के गायत्री महायज्ञ में ५५ मन अथवा ६० मन हवन सामग्री लगती है। गायत्री महायज्ञ में ६१ अथवा ७१ विद्वान् होते हैं। यह महायज्ञ ९ दिन अथवा ११ दिन में होता है। गायत्री महायज्ञ में १, ५, ९ अथवा २४ कुण्ड होते हैं।

गायत्री-पुरश्चरण

गायत्री पुरश्चरण में २४ दिन जप होता है। इसमें प्रत्येक विद्वान् को ३ हजार जप करना चाहिये। ३३ ब्राह्मणों के द्वारा गायत्रो का जप करने से प्रतिदिन निन्यानवे हजार (९९०००) जप होता है।

गायत्री पुरश्चरण में ३३ ब्राह्मण गायत्री जप करने वाले, १ आचार्य, १ ब्रह्मा, ४ द्वारपाल, १ देवीभागवत का पाठ कर्त्ता, १ श्री सूक्तपाठ कर्त्ता, १ गणेशमन्त्रजापक, १ नव ग्रहजापक और २ परिचारक इस प्रकार ४५ ब्राह्मण होते हैं।

गायत्रो पुरस्चरण में चौबीस लाख जप की समाप्ति में उसका दशांश हवन प्रतिदिन करना चाहिये। अथवा चौबीस लक्ष गायत्री जप का दशांश हवन प्रतिदिन करना चाहिये। चौबीस लक्ष गायत्री जप का दशांश हवन प्रायः ढ़ाई लाख होता है।

चौबी लाख जप के दशांश हवन करने के बाद हवन का दशांश तर्पण तर्पण का दशांश मार्जन, और और मार्जन, का दशांश ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये।

गायत्रो पुरश्चरण में प्रारम्भ और पूर्णाहुति के पूजन एवं

हवनादि कृत्य को मिलाकर प्रायः १ माह लगता है। गायत्री पुरश्चरण में १८ अथवा २० मन हवन सामग्री लगती है।

शतचण्डी–महायज्ञ

शतचण्डी ५ दिन ६ दिन में होती है। ५ दिन में होने वाली शतचण्डी में वृद्धिक्रम से दुर्गा का पाठ होता है। इसमें प्रथम दिन एक पाठ, द्वितीय दिन दो पाठ, तृतीय दिन तीन पाठ, और चतुर्थ दिन चार पाठ करना चाहिये।

पाँचवे दिन हवन करके शतचण्डी समाप्त करना चाहिये 'पञ्चमेऽहनि समाप्तिः स्यात्'' ऐसा लिखा भी है।

पाँच दिन की शतचण्डी में वृद्धिक्रम से दुर्गा पाठ करने के लिये १० ब्राह्मण होने चाहिये। नव दिन की शतचण्डी करने के लिये १० ब्राह्मण होने चाहिये।

आचार्य ब्रह्मादि अलग होते हैं। शतचण्डी में सवामन हवन सामग्री लगती है। शतचण्डी सर्वदा की जा सकती है। इसके लिये उत्तरायण और दक्षिणायन का विचार नहीं है।

कोटि होम

शताननो दशमुखो द्विमुखैकमुखस्तथा।
चतुर्विधो महाराज कोटिहोमो विधीयते ॥

(भविष्य पुराण)

'हे महाराज ? शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एक मुख भेद से चार प्रकार का कोटि होम होता है।

शतमुख में अर्थात् १०० कुण्डों के यज्ञ में प्रत्येक कुण्ड एक-एक हाथ लम्बा और चौड़ा होता है। प्रत्येक कुण्ड में १०-१० होता (हवनकर्त्ता बैठने चाहिये। इस प्रकार १०० कुण्डों के यज्ञ में एक हजार (१०००) होता होने चाहिये।

दशमुख में अर्थात् १० कुण्डों के यज्ञ में प्रत्येक कुण्डों के यज्ञ में प्रत्येक कुण्ड ६-६ हाथ लम्बा चौड़ा होता है। प्रत्येक कुण्ड में २०-२० होता बैठने चाहिये। इस प्रकार १० कुण्डों के यज्ञ में दो सौ (२०० होता होने चाहिये।

द्विमुख में अर्थात् दो कुण्डों के यज्ञ में प्रत्येक कुण्ड ६-६ हाथ लम्बा चौड़ा होता है। प्रत्येक कुण्डों में ५०-५० होता (हवनकर्त्ता) बैठने चाहिये। इस प्रकार से दा कुण्डों के यज्ञ में (१००) हाता होने चाहिये। एक मुख में अर्थात् एक कुण्ड के यज्ञ में आठ हाथ का, दस हाथ का अथवा सोलह हाथ का लम्बा और चौड़ा कुण्ड होता है।

१ कुण्ड के यज्ञ में होताओं की संख्या का कोई नियम नहीं है। यजमान अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार जितने भी होताओं को हवनार्थ बैठाना चाहे, बैठा सकता है।

कोटि होम उत्तम, मध्यम और अधम-इसप्रकार तीन प्रकार का मण्डप का परिमाण कहा है। १०० हाथ का उत्तम मण्डप, ५० हाथ का मध्यम मण्डप और इससे कम परिमाण का अधम मण्डप कहा गया है।

सौ (१००)हाथ का मण्डप निर्माण करके उसमें कुण्ड के निर्माणार्थं पूर्व और उत्तर की तरफ डोरी (रस्सी) से दस-दस विभाग करे और दस-दस सूत्र को पूर्व और पश्चिम में सूत्र दे। ऐसा करने से दस-दस हाथ के १०० कोष्ठ बन जाते हैं। १०० कोष्ठ के मध्य में दो-दो हाथ का कुण्ड बनना चाहिये। १०० कुण्डों के यज्ञ में सभी कुण्ड वृत्त, पद्म, अथवा चतुरस्त्र होते हैं।

दस कुण्डों के यज्ञ में सभी कुण्ड वृत्त, पद्म अथवा चतुरस्त्र होते हैं। दो कुण्ड के यज्ञों में दोनों कुण्डवृत्त, पद्म अथवा चतुरस्त्र होते हैं। एक कुण्ड के यज्ञ में वृत्त, पद्म, अथवा चतुरस्त्र कुण्ड हो ा है। सौ कुण्डों के यज्ञ में प्रथम पङ्क्ति मे निर्मित दस कुण्डों में से नैर्ऋत्य कोण के कुण्ड (प्रधान कुण्ड) में पञ्चभूसंस्कार पूर्वक अग्निस्थापन करना चाहिये। पश्चात् उसी कुण्ड से अन्य कुण्डों में

अग्निस्थापन करना चाहिये। पश्चात् उसी कुण्ड से अन्य कुण्डों में अग्निप्रणयन करना (अग्नि को लेजाना) चाहिये। अग्निस्थापन के बाद प्रत्येक कुण्ड में आधारावाज्यभागान्त कर्म करना चाहिये। स्विष्टकृत, पूर्णाहुति, और वसोर्द्धारादि कर्म प्रत्येक कुण्ड में पृथक्-पृथक् करना चाहिये। **कोटिहोम में 'प्रधान वेदी'** पूर्व दिशा में होती है और प्रधान कुण्ड नैर्ऋत्यकोण में होता है।

सौ कुण्डों के कोटि होम में एक हजार (१०००) ब्राह्मण हवन करने वाले होते हैं। इनके अतिरिक्त १ आचार्य, १ ब्रह्मा, १० सदस्य, १० गाणपत्य, १० उपद्रष्टा, ९९, कुण्डाचार्य, ९९, ब्रह्मा, १६ द्वार-पाल, १६ चारों वेदों के पाठकर्त्ता, १८ पुराणों के पाठकर्त्ता, ४ अन्नपूर्णास्तोत्र, ४ श्री सूक्त, ४ नवग्रहजापक, और ८ परिचारक — इस प्रकार—१३१८ (तेरह सौ अठारह) विद्वान् होने चाहिये।

कोटिहोम में ब्राह्मणों को सुवर्ण दक्षिणा, गौ तथा गजाश्वादि देना चाहिये। प्रधानाचार्य को गृह, हाथी, घोड़ा, रथ और गौ देना चाहिये।

सौ (१००)कुण्डों के यज्ञ ५५, कुण्डों के यज्ञ इस समय प्रचलित नहीं हैं यदाकदा होते हैं। सौ कुडों का कोटि होम बहुत बड़ा यज्ञ कहा गया है। इसमें हजारों ब्राह्मण भाग लेते हैं। बड़े कार्यों में विघ्न की सम्भावना ज्यादा रहती है। इसलिये बड़े यज्ञादि कार्यक्रमों को स्वल्प समय में ही करना चाहिये। "शुभस्य शीघ्रम्"।

दो कुण्डों का कोटिहोम एक महीने अथवा १५ दिन में पूर्ण होता है। एक कुण्ड के कोटि होम में समय की गणना का नियम नहीं है। जितने दिनों में यज्ञ पूर्ण हो उतने दिनों में यज्ञ पूर्ण करना चाहिये। १ कुण्ड के कोटि होम में, रुद्रयज्ञ में, महारुद्रयज्ञ में, अति-रुद्रयज्ञ में मुहूर्त्त का विचार अनावश्यक है। यजमान (कर्त्ता) अपनी अनुकूलतानुसार जब चाहे यज्ञ कर सकता है। कोटिहोम में हवन सामग्री २० मन लगती है।

"यज्ञ-मण्डप का संक्षिप्त स्वरूप"

दोष रहित पवित्र यज्ञय भूमि में शुभ मुहूर्त्त में शिल्पी (कारीगर) के द्वारा जानुमात्र भूमि को खुदवाकर उसको पवित्र जल, से गोमूत्र, गोबर आदि से पवित्र करे। पश्चात् 'पुण्याहवाचन वाचयित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम्' इस वचन के अनुसार गणपत्यादि पूजनपूर्वक, पुण्याहवाचनादि करके विधिपूर्वक भूमि पूजन करे। अनन्तर कम से कम १६ हाथ लम्बा और चौड़ा तथा एक हाथ ऊँचा चतुरस्त्र मण्डप बनावे।

उत्तम, मध्यम, अधम, तीन प्रकार के मण्डप होते हैं। १६ हाथ का मण्डप उत्तम, १४ का ११ हाथ का मण्डप मध्यम और १० हाथ का मण्डप अधम होता है। मण्डप के चारों ओर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा के मध्य में चार द्वार दो हाथ चौड़ा अथवा दो हाथ चार अंगुल चौड़ा अथवा दो हाथ आठ अंगुल चौड़ा बनावें ये चारों द्वार मण्डप के बाहर होने चाहिये। मण्डप के चारों ओर बाहर की ओर १२ स्तम्भ ७ अथवा ५ हाथ के लगावे। मण्डप के भीतर स्तम्भ ८ हाथ के लगावे अथवा मण्डपार्ध लगावे। इन सभी स्तम्भों का पंचमांश भाग जमीन में गाड़ देवें स्तम्भ की मोटाई कम से कम १० अंगुल होनी चाहिये। स्तम्भों की लकड़ी नूतन, सुदृढ़ और सीधी होनी चाहिये।

मण्डप स्थित १६ स्तम्भों के ऊपर १६ लकड़ी छेद करके पहना दे। पूर्व दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर दो-दो लकड़ी तथा चारों कोनों में चार लकड़ी पहना दे। मण्डप के मध्यभाग में ऊपरशिखर लगाना चाहिये। "अर्थात् परिमाणम्" इस प्रमाण के अनुसार (का० श्रौ सू०) शिखर यथा रुचि छोटा-बड़ा बनाया जा सकता है। मण्डप को सुदृढ़ करने के लिये विशेष लकड़ी का प्रयोग किया जा सकता है। मण्डप में छायार्थ, जलरक्षार्थ मण्डप के ऊपर टीन, चटाई, फूँस आदि का उपभोग करना चाहिये। मण्डप

के भीतर अग्नि से रक्षा के लिये कुण्डोंके ऊपर टीन लगाना उचित है। मण्डपाङ्ग दरवाजों को छोड़कर मण्डपस्थ समस्त स्तम्भों को लाल, पीले और अन्य शुभ रंगों के रेशमी वस्त्रों या सूती वस्त्रों से लपेटना चाहिये। पश्चात् गोटा, शीशा, देवताओं को फोटो और केले के स्तम्भों को लगाकर सुशोभित करना चाहिये। सोलह स्तम्भों पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, गणेश यमराज, नागराज, स्कन्द, (स्वामिकार्तिकेय) वायु, सोम, वरुण, अष्टवसु, धनद, (कुबेर) बृहस्पति, और विश्वकर्मा इन सोलह देवताओं की फोटो यथा क्रम लगाना चाहिये।

विष्णुयाग में मण्डप के मध्य में कुण्ड होता है और चारों कोनों में चारों वेदी होती हैं। अग्निकोण में मातृका वेदी और योगिनी वेदी वास्तु वेदी नैर्ऋत्य कोण में, वायव्य कोण में क्षेत्रपाल वेदी, ईशान में ग्रहवेदी, असंख्यात रुद्र वेदी तथा पूर्वदिशा में प्रधान वेदी होती हैं। प्रधान वेदी १ हाथ ऊँची और २ हाथ लंबी और २ हाथ चौड़ी होती है। और अन्य चारों वेदी १ हाथ ऊँची, १ हाथ चौड़ो होती हैं। रुद्रयाग में प्रधान वेदी ईशानकोण में होती है और उसके दाहिने ग्रहवेदो होती है।

मण्डप के एक हाथ अथवा दो हाथ वाहर द्वार पर पूर्वादि क्रम से तोरण द्वार होते हैं। इसमें पूर्व दिशा में वटवृक्ष या पीपल, दक्षिण दिशा में गूलर, पश्चिम दिशा में पीपल या पाकर और उत्तर दिशा में पाकर या वटवृक्ष की लकड़ी के तोरण द्वार बनाने चाहिये। उपर्युक्त सभी प्रकार की लकड़ी अप्राप्त होने पर इनमें से जो भी लकड़ी प्राप्त हो उसीसे तोरणद्वार निर्माण किये जा सकते हैं। चारों तोरणद्वारों में पूर्वादि क्रम से लाल, काला, सफेद और पीला वस्त्र लगाना चाहिये।

विष्णुयाग में इन चारों तोरणद्वारों के ऊपर मध्य में पूर्वादिक्रम से शंख, चक्र, गदा और पद्म लगाना चाहिये। रुद्रयाग में चारों तोरणद्वारों के ऊपर मध्य में त्रिशूल लगाना चाहिये। तोरणद्वार

में कथित काष्ठ से ही शंख, चक्र, गदा, पद्म और त्रिशूल बनवाना चाहिये। तोरणद्वारों में मण्डपद्वारों की तरह नीचे लकड़ी अर्थात् देहली नहीं होती है।

मण्डप के बाहर समस्त दिशाओं और विदिशाओं में वाहन के सहित १० त्रिकोण ध्वजा और १० चतुष्कोण पताका लगानी चाहिये। यदि सम्भव हो, तो ध्वजाओं में आयुध और पताकाओं में वाहन लगाना चाहिये।

ध्वजा ५ हाथ लम्बी और २ हाथ चौड़ी होती है और पताका ७ लम्बी और १ हाथ चौड़ी होती है। ध्वजा और पताकाओं को १०-१० हाथ के बाँस में लगाकर उसके पंचमांश को भूमि में गाड़ देना चाहिये। १० हाथ के बाँस के अभाव में छोटे बाँस को मण्डप के ऊपर लगाना चाहिये और वस्त्र के अभाव में छोटी-छोटी ध्वजा और पताका लगानी चाहिये।

महाध्वज १० हाथ लम्बा और ३ हाथ चौड़ा होता है। महाध्वज को ईशानकोण के मध्यभाग में लगाना चाहिये।

कुण्ड-मण्डप के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें

कुण्डों के भेद

चतुरस्त्र कुण्ड योनि कुण्ड, अर्धचन्द्र कुण्ड, त्रिकोण कुण्ड, वृत्त कुण्ड, षडस्त्र कुण्ड, पद्मकुण्ड और अष्टास्त्र कुण्ड—ये आठ प्रकार के कुण्ड होतें हैं।

एक कुण्ड

एक कुण्ड के यज्ञ में मण्ड के मध्य में ही कुण्ड होता हैं। एक कुण्ड के यज्ञ में चतुरस्त्र अथवा पद्म कुण्ड का निर्माण होता है, किन्तु कामना भेद से अन्य कुण्ड का भी निर्माण किया जा सकता है।

पाँच कुण्ड

पाँच कुण्ड के यज्ञ में पूर्व में चतुरस्त्र, दक्षिण में वृत्तार्ध (अर्ध-

चन्द्र ', पश्चिम में वृत्त (वर्त्तुल), उत्तर में पद्म और मध्य में चतुरस्त्र कुण्ड (आचार्य कुण्ड) होता है।

नव कुण्ड

नवकुण्ड के यज्ञ में पूर्वदिशा में चतुरस्त्र, अग्निकोण में योनि-कुण्ड, दक्षिण में अर्धचन्द्र, (वृत्तार्ध), नैर्ऋत्यकोण में त्रिकोण, पश्चिम दिशा में वृत्त, वायव्य कोण में षडस्त्र, उत्तर में पद्म कुण्ड, ईशानकोण में अष्टास्त्र अष्टकोण) और मध्य में चतुरस्त्र कुण्ड (आचार्य कुण्ड) होता है।

[1]चार कुण्ड

चार कुण्डों के यज्ञ में प्रधान वेदी बीच में होती है। पूर्व में चतुरस्त्र, दक्षिण में अर्धचन्द्र, पश्चिम में वृत्त, और उत्तर में पद्म कुण्ड होता है।

नव कुण्डों की योनि का विचार

नव कुण्डों के यज्ञ में पूर्व में चतुरस्त्र कुण्ड की योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है।

अग्निकोण में योनि कुण्ड होता है। इसमें योनि नहीं होती। दक्षिण में अर्धचन्द्र कुण्ड की योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है।

नैर्ऋत्यकोण में त्रिकोण कुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

पश्चिम में वृत्त कुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

वायव्य कोण षडस्त्र कुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है। उत्तर में पद्मकुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है। ईशान कोण में अष्टास्त्र कुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में

टि०—१. चार कुण्डों का विधान प्रतिष्ठा एवं तुलादानादि के लिये 'नारद पञ्चरात्र' और 'दानमयूख' आदि ग्रन्थों में लिखा है।

पूर्वाग्र होती है। मध्य में चतुरस्त्र कुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

पाँच कुण्डों की योनि का विचार

पाँच कुण्डों के यज्ञ में मध्य के कुण्ड की (चतुरस्त्र कुण्ड की) योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है। पूर्व में चतुरस्त्र कुण्ड की योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है।

दक्षिण में अर्धचन्द्र कुण्ड की योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है। पश्चिम में वृत्तकुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है। उत्तर में पद्मकुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

चार कुण्डों की योनि का विचार

पूर्व में चतुरस्त्र कुण्ड की योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है। दक्षिण में अर्धचन्द्र कुण्ड की योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है। पश्चिम में वृत्त कुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है। उत्तर में पद्मकुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

कुण्ड में मेखला और रंग का विचार

प्रत्येक कुण्ड में तीन-तीन मेखला होती हैं। ऊपर की मेखला का सफेद रंग, मध्य की मेखला का लाल रंग और नीचे की मेखला का रंग काला होता है।

कुण्डों के अलग-अलग फल

प्रत्येक कुण्डों के अलग-अलग फल होते हैं। चतुरस्त्र कुण्ड समस्त प्रकार की सिद्धि देने वाला है। योनि कुण्ड पुत्र को देने वाला, अर्धचन्द्र कुण्ड (वृत्तार्ध कुण्ड) शुभ फल को देने वाला है। त्रिकोण कुण्ड शत्रु नाश करने वाला है। वृत्त कुण्ड (वर्तुल कुण्ड) शान्ति-स्थापन करने वाला है। षडस्त्र कुण्ड मृत्युच्छेदन करने वाला (मृत्यु

को दूर करने वाला) है। पद्म कुण्ड वृष्टि को देने वाला है। अष्टास्त्र कुण्ड रोग को हटाने वाला है।

वर्ण भेद से कुण्ड निर्माण व्यवस्था

एक कुण्ड के यज्ञ में वर्ण भेद से ही कुण्ड बनाना चाहिये। जैसे–ब्राह्मण के लिये चतुरस्त्र कुण्ड, क्षत्रिय के लिये वृत्त कुण्ड, वैश्य के के लिये अर्ध चन्द्र कुण्ड, (वृत्तार्ध) और शूद्र के लिये त्रिकोण कुण्ड कहा गया है। अथवा वर्ण-चतुष्टय के लिये चतुरस्त्र या वृत्त कुण्ड कहा गया है।

[1]स्त्री यदि यज्ञ करे, तो उसके लिये योनि कुण्ड अथवा चतुरस्त्र कुण्ड कहा गया।

विभिन्न यज्ञों के कुण्डादि का विचार

विष्णुयाग में १, ५, और ६ कुण्डों के निर्माण का विधान कुण्ड मण्डप के ग्रन्थों में मिलता है। प्रतिष्ठा और तुलादानादि के लिये ७ कुण्डों का विधान 'नारद पञ्चयत्र' में और [2]चार कुण्डों का विधान 'दान मयूख' में मिलता है।

एक कुण्ड के विष्णु यज्ञ में महाविष्णु यज्ञ में और अति विष्णु याग में ६ हाथ (५८ अंगुल और ६ यव) का कुण्ड होता है।

विष्णुयाग में ५ कुण्ड एक-एक हाथ (चौबीस अँगुल) लंबे और चौड़े होते हैं। महाविष्णु याग में ५ कुण्ड दो दो हाथ(चौंतीस अंगुल) लंबे और चौड़े होते हैं। अति विष्णु याग में ५ कुण्ड चार-चार हाथ (अड़तालीस अंगुल) के लंबे और चौड़े होते हैं।

नवग्रह याग में सूर्य की प्रधानता होने के कारण मध्य का कुण्ड ही प्रधान कुण्ड (आचार्य कुण्ड) होना चाहिये, यह 'शान्ति मयूख" का मत है।

टि०–१. स्त्रीणां कुण्डानि राजेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत्। (सनत्कुमार:)

२. चतुष्कुण्डीपक्षे चत्वारि कुण्डान्यखातानि भवन्तीति 'दानमयूखे'

किसी आचार्य के मत से रुद्रयाग महारुद्रयाग, अतिरुद्रयाग, में १ कुण्ड, ५ कुण्ड, ९ कुण्ड, रुद्रपदेन ११ कुण्ड बनते है।

आज कल आधुनिक विद्वान चौबीस कुण्ड पचपन कुण्ड, एवं सौ० कुण्ड, और एक सौ आठ कुण्ड, भी बनते हैं।

शताननो दशमुखो द्विमुखैकमुखस्तथा ।
पञ्च पञ्चाशतो ब्रह्मन् रुद्रहोमो विधीयते ॥

(कुण्डकारिका)

कोटि होम में प्रधान कुण्ड नैर्ऋत्यकोण में होना चाहिये, यह "शान्तिमयूख" का मत है। कोटि होम में प्रधान वेदी पूर्व दिशा में होती है। कोटि होम मे अग्निस्थापन प्रधान कुण्ड में ही करना चाहिये।

कोटि होम में १०० कुण्ड हों तो प्रत्येक कुण्ड एक-एक हाथ लम्बा और चौड़ा होता है। कोटिहोम में दस कुण्ड हों, तो, प्रत्येक कुण्ड छः छ हाथ लम्बा चौड़ा होता है। कोटि होम में यदि दो कुण्ड हों, तो कुण्ड छः छः हाथ के लम्बे चौड़े होंगे।

कोटि होम में एक कुण्डहो, तो कुण्ड आठ हाथ का लम्बा अथवा दस हाथ का अथवा सोलह हाथ का होता है।

आहुतियों के हिसाब से कुण्ड का प्रमाण

५० से कम आहुतियों में कुण्ड नहीं होता, किन्तु स्थण्डिल होता है। ५० से ९९ तक आहुतियों में २१ अगुल का कुण्ड होता है। १०० ९९९ तक आहुतियों में २२½ अंगुल का कुण्ड होता है।

१००० (एक हजार) आहुतियों में १ हाथ का कुण्ड होता है।
१०००० (दसहजार)आहुतियों में २ हाथ का कुण्ड होता है।
१००००० (एक लाख) आहुतियों में ४ हाथ का कुण्ड होता है।
१०००००० (दस लाख) आहुतियों में ६ हाथ का कुण्ड होता है।
१००००००० (एक करोड़) आहुतियों में ८ हाथ का कुण्ड होता है।

शारदा तिलक का कहना है कि कोटि होम में १० हाथ का कुण्ड होना चाहिये—'दशहस्तमितं कुण्डं कोटिहोमेऽपि दृष्यते'। किसी आचार्य का मत है कि कोटि होम में १२ हाथ का कुण्ड होना चाहिए।

यज्ञमण्डप सम्बन्धी विविध विषयों पर विचार

१—उत्तम यज्ञ मण्डप ३२, २४, २०, १८ तथा १६ हाथ का लम्बा और चौड़ा कहा गया है। मध्यम मण्डप १४ हाथ तथा १२ का लम्बा और चौड़ा कहा जाता है। अधम मण्डप १० हाथ का लम्बा और चौड़ा कहा जाता है। कुछ लोग ८ हाथ के मण्डप को भी अधम मण्डप कहते हैं।

२—मण्डप की ऊँचाई एक हाथ अथवा आधा हाथ होती है।

३—मण्डप के भीतर चारों दिशाओं में चार वेदी बनती हैं। जैसे–ईशान में नवग्रह वेदी, असंख्यात रुद्र वेदी अग्निकोण में योगिनी वेदी, (मातृकादि), नैर्ऋत्यकोण में वस्तु वेदी और वायव्यकोण में क्षेत्रपाल की वेदी।

४—विष्णयाग में प्रधान वेदी पूर्व और दक्षिण दिशा के मध्य में होती है। आजकल पूर्व दिशा में हो प्रधान वेदी प्रचलित है।

५—रुद्र याग में प्रधान वेदी ईशानकोण में होती है।

६—रुद्रयाग में प्रधान वेदी के दक्षिण भाग में 'ग्रहवेदो' होती है।

७—प्रधान वेदी १ हाथ ऊँचो और दो हाथ चौड़ी होती है। अन्य क्षेत्रपालादि की चारों वेदियाँ एक-एक हाथ ऊँची और एक-एक हाथ चौड़ी होती है।

८—ग्रह वेदी में तीन सीढ़ी (वप्र) होती हैं। ग्रह वेदी की ही तरह असंख्यात वास्तु, क्षेत्रपाल और योगिनो वेदो में भी तीन-तीन सोढ़ियां (वप्र) होनी चाहिये।

९—प्रधान वेदी में दो सोढ़ी (वप्र) होती है।

१०—ग्रहवेदी आदि सभी वेदियों को, ऊपर की और मध्य को सीढ़ी तीन-तीन अंगुल ऊँचो और दो-दा अंगुल चौड़ी होती है। नीचे वाली तीसरी सीढ़ो दो अंगुल ऊँची दो अंगुल चौड़ी होती है।

११—ग्रहादि वेदियों की तीनों सींढ़ियों में ऊपर वाली सीढ़ी सफेद रंग की, मध्य वाली सीढ़ी लाल रंग की और नीचे वाली सीढ़ी काले रंग की होती है।

१२—प्रधान वेदी की ऊपर वाली सीढ़ी सफेद रंग की और नीचे वाली सीढ़ी लाल रंग की होती है।

१३—यज्ञमण्डप में १६ स्तम्भ होते हैं। बड़े मण्डप में अर्थात् १०० हाथ, ५० हाथ और ३२ हाथ के मण्डप में यज्ञमण्डप की मजबूती के लिये १६ स्तम्भों से अधिक भी स्तम्भ लगाये जा सकते हैं।

१४ १६ हाथ के यज्ञमण्डप में भी भीतर वाले चार स्तम्भ ६ हाथ के, बाहर वाले १२ स्तम्भ ५ हाथ के होते हैं।

१५—मण्डपस्थ स्तम्भों के पाँचवें हिस्से को भूमि में गाड़ना चाहिये।

१६—यज्ञ-मण्डप में स्तम्भों के लगाने का क्रम इस प्रकार है—यज्ञ मण्डप जितना बड़ा हो, उसीसे आधे प्रमाण के भीतर ४ स्तम्भ और बाहरी १२ स्तम्भ ७ हाथ के लगाने चाहिये।

१७—यज्ञमण्डप के स्तम्भ यज्ञिय काष्ठ, बाँस के अथवा अन्य पवित्र वृक्ष के लगाने चाहिये।

१८—यज्ञ-मण्डप के स्तम्भों की मोटाई १६ अंगुल, १० अंगुल अथवा यथेच्छ कही गई है।

१९—यज्ञमण्डप के १६ स्तम्भों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, (शिव) इन्द्र, सूर्य गणेश, यम, नागराज; स्कन्द, (कार्तिकेय), वायु, सोम,

वरुण, अष्टवसु, धनद (कुबेर) वृहस्पति और विश्वकर्मा—इन सोलह देवताओं का स्थापन होता है।

२०—यज्ञमण्डप के १६ स्तम्भों में इस प्रकार रंगीन वस्त्र लगाना चाहिये—मण्डप के भीतर वाले चारों स्तम्भों में क्रमशः १—ईशान में लाल वस्त्र, २—अग्निकोण में सफेद वस्त्र, ३—नैर्ऋत्यकोण में काला वस्त्र और ४—वायव्य कोण के स्तम्भ में पीला वस्त्र होना चाहिये।

मण्डप के बाहर वाले बारह १२ स्तम्भों में क्रमशः १—ईशानकोण के स्तम्भ में लाल वस्त्र, २—ईशान और पूर्व के स्तम्भ के मध्य में में सफेद वस्त्र, ३—पूर्व-और अग्निकोण के स्तम्भ के मध्य में काला वस्त्र, ४—अग्निकोण के स्तम्भ में काला वस्त्र, ५—अग्निकोण और दक्षिण के मध्य के स्तम्भ में सफेद वस्त्र, ६—दक्षिण और नैर्ऋत्यकोण के मध्य के स्तम्भ में धूम्र वस्त्र, ७—नैर्ऋत्यकोण में पीला वस्त्र, ८—नैर्ऋत्यकोण और पश्चिम के मध्य के स्तम्भ में सफेद वस्त्र, ९—पश्चिम और वायव्य कोण के मध्य के स्तम्भ में सफेद वस्त्र, १०—वायव्य कोण में पीला वस्त्र, ११—उत्तर और वायव्य कोण के मध्य में पीला वस्त्र, १२—उत्तर और ईशान कोण के मध्य में लाल वस्त्र होना चाहिये।

२१—दश १० दिक्पाल की १० ध्वजाएं होती हैं। ये ध्वजायें त्रिकोण होती हैं।

२२—ध्वजा २ हाथ चौड़ी और ५ हाथ लम्बी होती है। किसी आचार्य का मत है कि ध्वजा १ हाथ चौड़ा १ हाथ लम्बी होती है।

२३—पूर्व दिशा में पीले रंग की ध्वजा इन्द्र की होती है। इसका वाहन सफेद रंग का हाथी होता है।

अग्निकोण में लाल रंग की ध्वजा अग्नि की होती है। इसका वाहन सफेद रंग का मेष (मेढ़) होता है।

दक्षिण दिशा में काले रंग की ध्वजा यमराज की होती है। इसका वाहन लाल रंग का महिष (भैंसा) होता है। नैर्ऋत्य कोण में नीले रंग की ध्वजा नैर्ऋति की होती है इसका वाहन सफेद रंग का सिंह होता है।

पश्चिम दिशा में सफेद रंग की ध्वजा वरुण देवता की होती है। इसका वाहन धूम्र वर्ण की मछली होती है।

वायव्यकोण में धूम्र अथवा हरे रंग की ध्वजा वायु की होती है इसका वाहन काले रंग का हरिण (मृग) होता है।

उत्तर दिशा में सफेद रंग अथवा हरे रंग की ध्वजा सोम की होती है इसका वाहन सुवर्ण के सदृश अश्व (घोड़ा) होता है।

ईशानकोण में सफेद रंग की ध्वजा ईशान की होती है इसका वाहन लाल रंग का बैल होता है।

२४-ब्रह्मा की ध्वजा ईशान कोण और पूर्व के मध्य में सफेद अथवा लाल रंग की होती है इसका वाहन सफेद रंग का हंस होता है।

२५—अनन्त की ध्वजा नैर्ऋत्य कोण और पश्चिम के मध्य में सफेद रंग की अथवा काले रंग की होती है इसका वाहन गरुड़ होता है।

२६—ध्वजाओं को दस-दस हाथ के लंबे बाँस में लगाना चाहिये।

२७—हाथी, भेढ़ा, भैंस, सिंह, मछली, मृग, घोड़ा, बैल, हंस और गरुड़ ये ध्वजाओं के वाहन हैं।

२८—ध्वजाओं की तरह पताकाओं का रंग भी होता है।

२९—दशदिकपाल की १० पताका होती है। ये चतुष्कोण (चौकोर) होती हैं।

३०—पताका ७ हाथ लम्बी और १ हाथ चौड़ी होती है।

३१—पूर्वदिशा की पताका में आयुध वज्र होता है। अग्निकोण की पताका में आयुध शक्ति (तलवार) होती है।

दक्षिण दिशा की पताका में आयुध दण्ड होता है। नैऋर्त्य कोण को पता का में आयुध खड्ग होता है। पश्चिम दिशा की पताका में आयुध पाश होता है। वायव्य कोण की पताका में आयुध अङ्कुश होता है। उत्तर दिशा की पताका में आयुध गदा होती है। ईशान कोण की पताका में आयुध त्रिशूल होता है। पूर्व और ईशान कोण के मध्य की पताका में आयुध कमण्डलु होता है पश्चिम और नैऋर्त्य कोण की पताका में आयुध चक्र होता है।

३२—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशल पताकाओं के आयुध हैं।

३३—पताकाओं को दस-दस हाथ लंबे बाँस में लगाना चाहिये।

३४—महाध्वज एक होता है और यह त्रिकोण होता है।

३५—महाध्वज दश हाथ का अथवा सात हाथ या पाँच हाथ लंबा होता है। पाँच हाथ का अथवा साढ़े तीन हाथ का अथवा ३ हाथ चौड़ा होता है।

३६—महाध्व पञ्चरंगा अथवा चित्र विचित्र रंग का होता है।

३७—महाध्वज को दस हाथ, सोलह हाथ, इकतीस हाथ अथवा बत्तीस हाथ के लम्बे बाँस में लगाना चाहिये।

३८—महाध्वज को यज्ञमण्डप के मध्य में अथवा मण्डप के ईशान कोण में लगाना चाहिये।

३९—यज्ञ मण्डप में चार मण्डपद्वार होते हैं। यह ढ़ाई हाथ चौड़े और तीन हाथ ऊँचे होते हैं।

.०—मण्डप के दरवाजे (द्वार) बल्ली आदि के बनते हैं।

४१—मण्डप के चारों दिशाओं के चारों द्वारों में चार 'तोरण द्वार' होते हैं। ये चारों तोरणद्वार मण्डप द्वार से एक एक हाथ अथवा दो-दो हाथ की दूरी पर बनने चाहिये।

४२—तोरणद्वारों में मण्डप के द्वारों की तरह नीचे की ओर लकड़ी (देहली) नही होती।

४३—तोरणद्वार के निर्माण के लिये पूर्व में पीपल अथवा बट (बरगद) की, दक्षिण में गूलर की, पश्चिम में पीपल की अथवा पाकर की और उत्तर में पाकर अथवा बर (बरगद) की लकड़ी होनी चाहिये।

यदि चारों द्वारों के लिये उपर्युक्त अलग-अलग लकड़ी प्राप्त न हो सके, तो निर्दिष्ट लकड़ियों में किसी भी उपलब्ध एक लकड़ी से भी तोरणद्वार बनाये जा सकते हैं।

४४—पूर्व द्वार के तोरण में पीला वस्त्र, दक्षिण द्वार के तोरण में काला वस्त्र, पश्चिम द्वार के तोरण में सफेद वस्त्र, और उत्तर द्वार के तोरण में पीला वस्त्र लगाना चाहिये।

४५—विष्णुयाग में चारों तोरण द्वारों के ऊपर क्रमशः पूर्व में शंख, दक्षिण में चक्र, पश्चिम में गदा और उत्तर में गदा लगाना चाहिये।

४६—विष्णु याग में उत्तम मण्डप में १४ अंगुल लंबा और ३।। अंगुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिये। मध्यम मण्डप में १२ अंगुल लम्बा और ३ अंगुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिये। अधम मण्डप में १० अंगुल लम्बा और २।। अंगुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिये।

उपर्युक्त विष्णुयज्ञ के उत्तमादि मण्डप के शंखादि के कीलों का पञ्चमांश तोरण पर गाड़ देना चाहिये। और द्वार का पाँचवाँ हिस्सा मण्डप से एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिये।

४७—रूद्रयाग में चारों दिशाओं में लगे हुए चारों तोरणद्वारों के ऊपर त्रिशूल बनाना चाहिये।

४८—रुद्रयाग में उत्तम मण्डप में १३ अंगुल लंबा ३। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरण में गाड़ना चाहिये। मध्यम मण्डप में ११

अंगुल लंबा और २॥ अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरण में गाड़ना चाहिये। अधम मण्डप में २ अंगुल त्रिशूल को तोरण में गाड़ना चाहिये। उपर्युक्त रुद्रयज्ञ के उत्तमादि मण्डप के त्रिशूलादि के कीलों का पञ्चमांश तोरण पर गाड़ना चाहिये और द्वार का पाँचवां हिस्सा मण्डप से एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिये।

यज्ञमण्डप के कलशों का विवरण

४९—यज्ञमण्डप के बाहर १८ कलश होते हैं। इनमें ४ कलश मण्डप के बाहर चारों दिशाओं के चारों कोनों में रखे जाते हैं और ४ कलश चारों विदिशाओं के चारों कोनों में रखे जाते हैं और १ कलश पूर्व और ईशानकोण के मध्य में ब्रह्मा का होता है और १ कलश पश्चिम और नैर्ऋत्यकोण के मध्य में अनन्त का होता है। ये १० कलश दश दिक्पाल के होते हैं। यज्ञमण्डप के चारों द्वारों पर दो-दो कलश होते हैं, जिन्हें 'द्वारकलश' कहते हैं। इस प्रकार यज्ञमण्डप के १८ कलश होते हैं। परन्तु बहुत लोग मण्डप के भीतर स्तम्भों के पास भी कलश रखते हैं, किन्तु यह क्रम प्रचलित नहीं है।

५०—यज्ञमण्डप के शिखर का प्रमाण प्रायः किसी भी कुण्ड मण्डप ग्रन्थकर्ता ने नहीं लिखा है। अतः महर्षि कात्यायन के 'अर्थात् परिमाणम्' इस प्रमाण के अनुसार मण्डपानुरूप यथेच्छ शिखर का निर्माण करना चाहिये।

५१—यज्ञमण्डप के समस्त स्तम्भों में भगवान् के सुन्दर चित्रों और शीशों को लगाना चाहिये।

५२—यज्ञमण्डप के भीतर ऊपर की छत की ओर चारों तरफ सफेद वस्त्र का वितान (चंदवा) लगाना चाहिये।

५३—यज्ञमण्डप में समय के परिज्ञान के लिये घड़ी (घटिका यन्त्र) लगाना चाहिये।

यज्ञादि में प्रायश्चित्त की आवश्यकता

महत्कर्म समुत्कर्तुं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत सायान्हे वाऽपराह्णके ।।
(प्रतिष्ठेन्दु)

यज्ञ-याग में महान् कर्म करने के लिये सर्वप्रथम प्रायश्चित्त करना चाहिये। उसे याग प्रारम्भ करने के पहले दिन सायंकाल अथवा अपरान्ह में करना चाहिये ।

यज्ञादि धार्मिक कार्यों में सर्वप्रथम सर्व प्रायश्चित्त यजमान को करना चाहिये । ज्ञात अज्ञात समस्त दोषों के निवारण हेतु तथा शरीर-शुद्धि के लिये अवश्य ही यथाशक्ति प्रायश्चित्त करना चाहिये ।

धर्मकार्यं महत्कर्तुं यदीच्छेद्दशभिर्दिनैः ।
प्रायश्चित्तं यथावित्तं प्राक्कार्यं तेन शुद्धये ।।
षडब्दं चतुरब्दं वा त्र्यब्दं द्व्यब्दं तथैव वा ।
गोहिरण्यादिदानं वा कृत्वा कर्म समारभेत् ।।
(परशुराम कारिका)

मनुष्य यदि विशाल यज्ञादि धार्मिक कृत्य करने की इच्छा करें, तो उसको सर्वप्रथम कार्य करने के लिये यथाशक्ति षडब्द, चतुरब्द, त्र्यब्द अथवा द्व्यब्द प्रायश्चित्त करना चाहिये और गोदान एवं सुवर्ण मुद्रिका दान करके कर्म प्रारम्भ करना चाहिये ।

नारायण भट्ट ने तो षडब्द, त्र्यब्द और सार्धाब्द - इस क्रम से प्रायश्चित्त करने को लिखा है । अतः इसमें से किसी एक प्रायश्चित्त को करके यज्ञ का प्रारम्भ करना चाहिये ।

सर्व प्रायश्चित्त द्रव्य निर्णय

अब्द– त्रिंशत् (३०), सार्धाब्द-पञ्चचत्वारिंशत् (४५)
त्र्यब्द—नवतिः (९०), चतुरब्द-विंशत्युत्तरशतम् (१२०)

षडब्द—अशीत्यधिकशतम् (१८०)

द्वादशाब्द—षष्टचुत्तर त्रिशतम् (३६०)

इति प्राजापत्यानि कुर्यात्। प्रजापत्याभावे तावत्संख्यक गवां दानं कार्यम्। तदशक्तौ तन्निष्क्रयदानम्।

सर्वप्रायश्चित्त-संकल्प

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य० अद्य ब्राह्मणोऽन्हि द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवश्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरत खण्डे भारतवर्षे आर्यावर्तैक देशे, अमुकक्षेत्रे, अमुक नद्याः अमुके तीरे विक्रमशके वौद्धावतारे अमुकनाम्निसंवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमेमासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुक नक्षत्रे अमुकयोगे अमुक करणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुक राशिस्थिते सूर्ये अमुक राशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथा यथा राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं गुणगण विशेषण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहं मम इहजन्मनि जन्मान्तरे वा बाल्य-यौवन-वार्धक्यावस्थासु वाक्-पाणि-पाद-पायूपस्थ-श्रोत्र-चक्षुः जिह्वा-घ्राण-मनोभिः ज्ञात-अज्ञात-कामाकाम सकृद असकृत्-कायिक-वाचिक-मानसिक-सांसर्गिकाणाम् आचरितानां समेषां पापानाम्, ब्राह्मण, गुरु, माता-पितृ-देव, तीर्थ, वेद, शास्त्र, माता-पितृ-ज्येष्ठ-भ्रात् गुरु निन्दा, अस्पृश्य-स्पर्शन-अश्रव्यश्रवण-अहिंस्य-हिंसन-अवन्द्य-वन्दन-अचिन्त्य-चिन्तन-अयाज्य-याजन-अपूज्यपूजन रूपाणाम्, परमर्म उद्घाटन मिथ्यापवाद-मिथ्याभाषण-म्लेच्छ-संभाषण-पतितसम्भाषण-परस्त्रीगमन्-ब्रह्मद्वेषकरण-ब्रह्मवृत्तिहरण-पर-वृत्तिहरण-हीनजातिसेवन-निषिद्ध आचरणरूपाणाम्, शौचत्याग-सन्ध्योपासनत्याग-तर्पण-बलिवैश्वदेव-नित्यहोमत्याग-देवपूजनत्याग-परिवार त्याग-कुलत्याग-स्वधर्मत्याग-सदाचारत्याग-गुरुत्याग-वेद-

त्याग-आश्रमत्यागरूपाणाम्, अभक्ष्य-भक्षण-अभोज्य-भोजननिषिद्ध-भोजन-परान्नभोजन अचूष्य-चूषण-अलेह्य-लेहन-अपेयपानसंकलीकरण-मलिनीकरण-अपात्रीकरण-जातिभ्रंशकर-प्रकीर्णकपात- कानां गुरु-लघु-स्थूल-सूक्ष्मरूपाणां समेषां पापानां परिहारपूर्वकं यावत्फल-प्राप्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं स्वशरीर संशुद्धये देव ब्राह्मण सन्निधौ करिष्यमाण अमुकयागकर्माधिकार सिद्धयर्थं द्वादशाब्द (३६०), षडब्द (१८० , त्र्यब्द (९०), सार्धाब्द (४५), अब्द (३०), चतुरब्दं (१२०), वा सवप्रायश्चित्तं करिष्ये।[1]

अथ जलयात्राविधिः।

यज्ञप्रारम्भदिने यजमानः पूजासामग्रीं गृहीत्वा आचार्यादि-ऋत्विजां वरणानन्तरं पूजासामग्रीं वेदमन्त्रोच्चारण-भगवन्नामकीर्तन-वाद्यघोषपुरस्सरं आचार्यादिऋत्विग्भिः नगरवासिभिः सुवासिनी-भिश्च सह नदीं जलाशयं वा गच्छेत्। नद्यां जलाशये वा गत्वा प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य यजमानः सङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा—

देशकालौ सङ्कीर्त्य "करिष्यमाणस्य अमुकयागकर्मणः निर्विघ्नता-सिद्ध्यर्थं वरुणदेवताप्रीत्यर्थं वरुणदेवस्य पूजनमहं करिष्ये।"

इति सङ्कल्प्य, जलसमीपे रक्ताक्षतैः पीताक्षतैर्वा नव कोष्ठान् निर्माय तेषु दिक्षु—विदिक्षु अष्टौ कलशान् संस्थाप्य, मध्ये कलशमेकं संस्थापयेत्। अनन्तरं तेषु सर्वेषु कलशेषु जलं परिपूर्य तेषां गन्धाक्षत-पुष्पादिना पूजनम्। ततः तत्रैव पट्टवस्त्रे पङ्क्तित्रये सप्त-सप्त-

---

१—यजमान के लिये पाठ करते समय 'करिष्यामि' और आने लिये पाठ करते समय 'करिष्ये' ऐसा कहना चाहिये। ब्राह्मण के द्वारा पाठ कराना हो तो 'कारयिष्ये' कहना चाहिये।

अक्षतपुञ्जान् विधाय तेषु क्रमेण [1]जलमातृणां [2]जीवमातृणां [3]स्थलमातृणाञ्च आवाहनं स्थापनं पूजनञ्च कुर्यात् ।

अथ जलमातृणां पूजनम् -

मत्स्यै नमः, मत्सीमावाहयामि स्थापयामि । कूर्म्यै नमः, कूर्मीमा० । वाराह्यै नमः, वाराहीमा० । दर्दुर्यै नमः, दर्दुरीमा० । मकर्यै नमः, मकरीमा० । जलूक्यै नमः, जलूकीमा० । तन्तुक्यै नमः, तन्तुकीमा० ।

'मत्स्यादिजलमातृभ्यो नमः' इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

अथ जीवमातृणां पूजनम् —

कुमार्यै नमः, कुमारीमावाहयामि स्थापयामि । धनदायै नमः, धनदामा० । नन्दायै नमः, नन्दामा० । विमलायै नमः, विमलामा० । मङ्गलायै नमः, मङ्गलामा० । अचलायै नमः, अचलामा० । पद्मायै नमः, पद्मामा० ।

'कुमार्यादिजीवमातृभ्यो नमः' इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

अथ स्थलमातृणां पूजनम् —

ऊर्म्यै नमः, ऊर्मीमावाहयामि स्थापयामि । लक्ष्म्यै नमः, लक्ष्मीमा० । महामायायै नमः, महामायामा० । पानदेव्यै नमः, पानदेवीमा० । वारुण्यै नमः, वारुणीमा० । निर्मलायै नमः, निर्मलामा० । गोधायै नमः, गोधामा० ।

१—मत्सी कूर्मी च वाराही दर्दुरी मकरी तथा ।
जलूकी तन्तुकी चैव सप्तैता जलमातरः ।। (रुद्रकल्पद्रुम)

२ - कुमारी धनदा नन्दा विमला मङ्गलाऽचला ।
पद्मा चेति सुविख्याताः सप्तैता जीवमातरः ।। (रुद्रकल्पद्रुम)

३— ऊर्मी लक्ष्मी महामाया पानदेवी तथैव च ।
वारुणी नर्मदा गोधा सप्तैताः स्थलमातरः ।। (रुद्रकल्पद्रुम)

'ऊर्म्यादिस्थलमातृभ्यो नमः' इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

पश्चात् दशसु दिक्षु दशदिक्पालानां पूजनम् । ततः नद्यां जलाशये वा नदीस्तीर्थानि चावाहयेत् ।

काशी कुशस्थली मायाऽवन्त्ययोध्या मधोः पुरी ।
शालिग्रामः सगोकर्णो नर्मदा च सरस्वती ॥ १ ॥
आगच्छन्तु सरिज्ज्येष्ठा गङ्गा पापप्रणाशिनी ।
नीलोत्पलदलश्यामा पद्महस्ताम्बुजेक्षणा ॥ २ ॥
आयातु यमुना देवी कूर्मयानस्थिता सदा ।
प्राची सरस्वती पुण्या पयोष्णी गौतमी तथा ॥ ३ ॥
ऊर्मिला चन्द्रभागा च सरयू गण्डकी तथा ।
वितस्ता च विपाशा च नर्मदा च पुनः पुन ॥ ४ ॥
कावेरी कौशिकी चैव गोदावरी महानदी ।
मन्दाकिनी वसिष्ठा च तुङ्गभद्रा शशिप्रभा ॥ ५ ॥
अमरेशः प्रभासश्च नैमिषं पुष्करं तथा ।
कुरुक्षेत्रं प्रयागं च गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ ६ ॥
एता नद्यश्च तीर्थानि यानि सन्ति महीतले ।
तानि सर्वाणि आयान्तु पावनार्थं द्विजन्मनाम् ॥ ७ ॥

इति नदीनां तीर्थानाञ्चावाहनं कृत्वा 'गङ्गादिनदीभ्यो नमः', 'पुष्करादितीर्थेभ्यो नमः' इति पञ्चोपचारैः पूजनं कुर्यात् । ततः जलमध्ये वरुणदेवस्य पूजनम् । हस्ते गन्धाक्षतपुष्पाणि गृहीत्वा 'ॐ इमं मे वरुणश्रुधी'० इत्यनेन मन्त्रेण वरुणं सम्पूज्य जले 'ॐ पञ्च नद्यः'० इति मन्त्रेण पञ्चामृतस्य प्रक्षेपः । पश्चात् जले द्वादश आज्याहुतीर्जुहुयात् । तद्यथा—

ॐ अद्भ्यः स्वाहा ।१ॐ वार्भ्यः स्वाहा । २ॐउदकाय स्वाहा ।३ ॐ तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा ।४ॐस्रवन्तीभ्यः स्वाहा ।५ॐस्यन्दमानाभ्यः स्वाहा ।६ॐ कूप्याभ्यः स्वाहा ।७ॐ सूद्याभ्यः स्वाहा ।८ॐ धार्याभ्यः स्वाहा । ९ॐ अर्णवाय स्वाहा ।१०ॐ समुद्राय स्वाहा । ११ॐ सरिराय स्वाहा । १२ (शु० य० २२।२५) ।

अथवा "ॐ अद्भ्यः सम्भृतः०" इत्यादिमन्त्रैः घृतेन दध्ना वा स्रुवेण विंशतिवारं आहुतीर्दद्यात् ।

ततोऽर्घपात्रे जलेन साकं गन्धाक्षतपुष्पाणि गृहीत्वा नद्यां जलाशये वा वारत्रयमर्घ्यं दद्यात् । पश्चात् नद्यां श्रीफलं प्रक्षिपेत् । ततो देवानां विसर्जनं कृत्वा आचार्यादिऋत्विजां सुवासिनीनाञ्च पूजनं विधाय दक्षिणां च दद्यात् । पश्चात् पूजितान् नवकलशान् उत्थाप्य नवसंख्याकानां सुवासिनीनां मस्तकोपरि धारयेत् । ततो यजमानः वेदमन्त्र-भगवन्नामकीर्तनं कुर्वन् आचार्यादिऋत्विग्भिः सह यज्ञस्थलं प्रति गच्छेत् । अर्धमार्गे स्थित्वा इन्द्रादिदशदिक्पालानां, क्षेत्रपालस्य च आवाहनं पूजनं च कृत्वा सर्वेभ्यः बलिं दद्यात् । ततो यज्ञस्थलमागत्य हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य यज्ञमण्डपस्य प्रदक्षिणां कृत्वा यज्ञमण्डपस्य पश्चिमद्वारस्य पूजनं विधाय तेनैव द्वारेण मण्डपे प्रविश्य पूजितनवकलशान् यज्ञमण्डपस्य वारुणमण्डलोपरि स्थापयेदिति ।

इति जलयात्राविधिः ।

अथ अवभृथस्नानविधिः ।

यजमानः पूर्णाहुत्यनन्तरं पूर्णपात्रादिदानानन्तरं प्रधानवेद्युपरि स्थापितं प्रधानकलशं, हवनकुण्डाद् वहिः पतितं हवनीयद्रव्यं, स्रुक्-स्रुवादियज्ञपात्रं पूजनसामग्रीं च गृहीत्वा वेदमन्त्रोच्चारण—भगवन्नामकीर्त्तन-वाद्यघोषपुरस्सरं आचार्यादिऋत्विगभिः नगरवासिभिश्च सह नदीं जलाशयं वा गच्छेत् । अर्धमार्गोपरि क्षेत्रपालं सम्पूज्य क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात् । नदीं जलाशयं वा गत्वा

आचार्यादय ऋत्विज स्वस्तिवाचनं कुर्युः। पश्चाद् यजमानः सङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा —

देशकालौ सङ्कीर्त्य "मम सर्वेषां परिवाराणां तथान्येषां समुपस्थितानां जनानाञ्च सर्वविधकल्याणपूर्वकं धर्मार्थकाममोक्ष-चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतिपूर्वकं च कृतस्य अमुक-यागकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च पुण्यकालेऽस्मिन् अस्यां नद्यां जलाशये वा माङ्गलिकं अवभृथस्नानं समस्तसमुपस्थित-जनैः सहाहं करिष्ये।"

अनन्तरं नद्यां जलाशये वा [1]जलमातृणामावाहनं पूजनञ्च कुर्यात् तद्यथा —

मत्स्यै नम, मत्सीमावाहयामि स्थापयामि। कूर्म्यै नमः, कूर्मीमावा०। वाराह्यै नमः, वाराहीमावा०। दर्दुर्यै नमः, दर्दुरीमावा०। मकर्यै नमः, मकरीमावा०। जलूक्यै नमः, जलूकीमावा०। तन्तुक्यै नमः, तन्तुकीमावा०।

ततो वरुणमावाहयेत्—

आगच्छ जलदेवेश जलनाथ पयस्पते।
तव पूजां करिष्यामि कुम्भेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

इत्यावाह्य सम्पूज्य च,

श्वेताभ्र शिखिराकार सर्वभूतहिते रतः।
गृहाणार्घ्यमिमं देव जलनाथ नमोऽस्तु ते॥

इति विशेषार्घ्यं दद्यात्। ततः—

ॐ इमं मे व्वरुण श्श्रुधी हवयया च मृडय॥ त्वामस्युराचके॥१॥
ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानोहविर्भिः।
अहेडमानो व्वरुणेह बोद्ध्युरुशर्ठ समान ऽआयुः प्रमोषीः॥२॥

---

1. मत्सी कूर्मी च वाराही दर्दुरी मकरी तथा।
जलूकी तन्तुकी चैव सप्तैता जलमातृकाः॥ (रुद्रकल्पद्रुम)

ॐ त्वन्नोऽअग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान् देवस्य हेडो ऽअवयासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमर्ठ, शोशुचानो व्विश्वा द्वेषाॐसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ।३।
ॐ सत्वन्नो ऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो ऽअस्या ऽउषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्वनो व्वरुणर्ठ रराणो व्वीहि मृडीकर्ठं सुहवोनऽएधि ।।४।।
ॐ मापो मौषधीर्हिर्ठ सीर्द्धाम्नो धाम्नो राजँस्ततो व्वरुणनोमुञ्च ।
यदाहुरघ्न्या ऽइति व्वरुणेति शपामहे ततो व्वरुणनो मुञ्च ।।५।।
ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं व्विमध्यमॐ श्रथाय ।
अथा व्वयमादित्य व्व्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम ।।६।।
ॐ मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो व्वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्व्वस्माद्देवकिल्विषात् ।।७।।
ॐ अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनो यासिषमवमर्त्त्यैमर्त्त्यकृतं पुरुराव्णो देव-
रिषस्पाहि ।।

इति मन्त्रैः सम्प्रार्थ्य स्त्रुवरेखया तीर्थप्रकल्पनं कुर्यात् ।

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि चाक्रुष्याङ्कुशमुद्रया ।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ।।

इति रज्वादिना परितश्चतुरस्त्रं स्नानार्थं व्यवस्थां प्रकल्पयेत् ।

ततः : —

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ।।

इति मन्त्रेण नदीं जलाशयं वा सम्पूज्य ततो लाजादिना [1]जीव-
मातृणां बलिं दद्यात् । तद्यथा—

१. कुमारी धनदा नन्दा विमला मङ्गलाऽचला ।
पद्मा चेति सुविख्याताः सप्तैता जीवमातरः ।। (रुद्रकल्पद्रुम)

कुर्मार्यै नमः। धनदायै नमः। नन्दायै नमः। विमलायै नमः। मङ्गलायै नमः। अचलायै नमः। पद्मायै नमः।

पश्चात विष्णुयागे पुरुषसूक्तेन, रुद्रयागे रुद्रसूक्तेन, लक्ष्मीयागे श्रीसूक्तेन च जले अभिषेकः कार्यः। ततो [२]होमावसरे हवनकुण्डाद् बहिः पतितं हवनीयद्रव्यं नद्यां जलाशये वा तूष्णीं प्रक्षिपेत्।

ततो जले 'वडवाग्निरूपायाग्नये नमः' इति मन्त्रेण षोडशोपचारः पञ्चोपचारैर्वा सम्पूज्य द्वादश आज्याहुतिर्जुहुयात्। तद्यथा—

ॐ अद्भ्यः स्वाहा, इदमद्भ्यो न मम॥ १॥
ॐ वार्भ्यः स्वाहा, इदं वार्भ्यो न मम॥ २॥
ॐ उदकाय स्वाहा, इदमुदकाय न मम॥ ३॥
ॐ तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा, इदं तिष्ठन्तीभ्यो न मम॥ ४॥
ॐ स्रवन्तीभ्यः स्वाहा, इदं स्रवन्तीभ्यो न मम॥ ५॥
ॐ स्यन्दमानाभ्यःस्वाहा, इदं स्यन्दमानाभ्यो न मम॥६॥
ॐ कूप्याभ्यः स्वाहा, इदं कूप्याभ्यो न मम॥ ७॥
ॐ सूद्याभ्यः स्वाहा, इदं सूद्याभ्यो न मम॥ ८॥
ॐ ॐ धार्याभ्यः स्वाहा, इदं धार्याभ्यो न मम॥ ९॥
ॐ अर्णवाय स्वाहा, इदमर्णवाय न मम॥१०॥
ॐ समुद्राय स्वाहा, इदं समुद्राय न मम॥११॥
ॐ सरिराय स्वाहा, इदं सरिराय न मम॥१२॥

ऋत्विजो द्वारा अग्नि में जो हवि दी जाती है उस छवि का जो भाग जमीन या मध्य की परिधि में गिर जाता है वह वरुण (जल) का भाग है। अतः उस वरुण भाग को नदी, जलाशय अथवा कूप में डलवा देना चाहिये।

---

२. ऋत्विजां जुह्वतामग्नौ बहिः पतति यद्धविः।
स ज्ञेयो वारुणो भागः प्रक्षेप्यो विलले जले॥ (शौनकः)

ततो यजमानः सम्पूजितेन प्रधानकलशोदकेन **ॐ इमं मे०। ॐ तत्त्वा यामि०। ॐ त्वन्नो ऽअग्ने व्वरुणस्य०। ॐ सत्वन्न ऽअग्ने वमः०। ॐ उदुत्तमम्०।** इति वारुणमन्त्रैः स्नानं कुर्यात्। ततः प्रधानकलशोदकेन कुशैः दूर्वाङ्कुरैश्च अन्येषां जननां सम्मार्जनं कारयेत्।

पश्चाद् यजमानः यज्ञकुण्डादानीतेन भस्मना स्रुचिस्थितेन आज्येन च शरीररे अनुलेपनं कृत्वा नद्यां जलाशये वा स्नानं कुर्यात्। स्नानानन्तरं नूतनवस्त्राणि परिधाय तिलकाद्यलङ्करणं कुर्यात्।

अनन्तर यजमान यज्ञ कुण्ड से लायी हुई भष्म को तथा स्त्रुचि में लगे हुए घृत को अपने शरीर में लेपन कर नदी अथवा जलाशय में स्नान करे। स्नान करने के बाद नवीन वस्त्र धारण करके तिलकादि अलंकरण धारण करे।

ततो यजमानः—

ॐ हठेसःशुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता व्वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऽऋतजा ऽअद्रिजा ऋतंबृहत्॥

इति मन्त्रेण सूर्योपस्थानं कृत्वा तीर्थदेवतां सम्पूज्य प्रार्थयेत्--

ॐ हिरण्यश्रृङ्गोऽयो ऽअस्य पादा मनोजवाऽअवर ऽइन्द्र ऽआसीत्। देवा ऽइदस्य हविरद्यमायन्यो ऽअर्व्वन्त प्रथमो ऽअद्ध्यतिष्ठत् ॥*॥ ईर्म्मान्तासः सिलिकमद्ध्यमासः सठं*शूरणासो दिव्यासोऽअत्याः। हठंसाऽइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वा ॥ तव शरीरं पतयिष्ण्वर्व्वन् तव चित्तं व्वात ऽइव ध्रजीमान्। तव श्रृङ्गाणि व्विष्ठिता पुरुत्त्रारण्येषु जर्भ्भुराणा चरन्ति ॥

* शुक्लयजुर्वेद २२।२५।

ततो यजमानः आचार्यादिभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दद्यात् । पश्चात् प्रधानकलश पूजादिसामग्रीं च गृहीत्वा भगवन्नामकीर्तनं कुर्वन् आचार्यादिऋत्विग्भिः सह सपत्नीको यजमानः यज्ञस्थलमागत्य हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य यज्ञमण्डपस्य प्रदक्षिणां कृत्वा यज्ञमण्डपस्य पूर्वद्वारेण प्रविशेत् । ततः प्रधानकलशं प्रधानवेद्युपरि स्थापयेत् । पश्चाद् यज्ञावशिष्टं कर्म समापयेदिति ।

इति अवभृथस्नानविधिः ।

अथ नववर्द्धिनो कलशस्थापन विधिः

जलाशय के समीप जाकर लाल चावलों से भूमि पर नौ (९) कोष्ठों का निर्माण करे ।

अनन्तर उन कलशों को दिशा और विदिशाओं में, आठ कलशों को आठों कोष्ठों में रखें, फिर अवशिष्ट बचे एक कलश का स्थापन मध्य के कोष्ठ में करे । इस प्रकार नौ कलशों की स्थापना करे ।

नौ कुम्भों में जल भरें

वहाँ पर मध्यकलश में, पूर्व के कलश में, अग्निकोण के कलश में, दक्षिण दिशा के कलश में, नैर्ऋत्यकोण के कलश में, पश्चिम दिशा के कलश में, वायव्यकोण के कलश में, उत्तर दिशा के कलश में, तथा ईशानकोण के कलशों को अलग-अलग जल से परिपूर्ण करे । यथा—

१—ॐइमं मे व्वरुणश्रुधीः" इस मंत्र से मध्य के कलश में जल भरे ।

२ - ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनम्०" इस मन्त्र से पूर्व दिशा के कलश में जल भरे ।

३–ॐ तत्त्वा यामि०" इस मन्त्र से अग्निकोण के कलश में जल भरे ।

४—ॐ त्वां नोऽअग्ने व्वरुणस्य०" इस मन्त्र से दक्षिण दिशा के कलश में जल भरे ।

५-ॐसत्वन्नोऽअग्ने० इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यकोण के कलश में जल भरे ।

६—ॐआपोहिष्ठा० इस मन्त्रसे पश्चिम दिशाके कलश में जल भरे ।

७—ॐ समुद्रायत्वा व्वाताय स्वाहा०" इस मन्त्र से वायव्यकोण के कलश में जल भरे।

८ - ॐ समुद्रोऽसिनभस्वानार्द्रदानुः०" इस मन्त्र से उत्तर दिशा के कलश में जल भरे।

अनन्तर कलशस्थापन विधि से नवकलशों का स्थापन तथा पञ्चोपचार से उनका पूजन करे।

अनन्तर—ॐ पञ्चनद्यः०" इस मन्त्र से गङ्गादि नदियों का आवाहन करे। तथा मनोंजूतिः०" इस मन्त्र से नौ कलशों की प्रतिष्ठा करे। इसके बाद "ॐ भूर्भुवः स्वः वर्द्धिनीकलशाः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवत" ऐसा कहे।

"ॐ तत्वायामिब्राह्मणा०" इस मन्त्र से धातु के नौ कलशों के ऊपर रखे हुए पूर्णपात्रों में जो पूगीफल रखें हैं उन पूगीफलों (सुपारियों) पर वरुणदेवता का आवाहन करे।

"ॐ मनोजूतिः" इस मन्त्र से वरुण देवता की प्रतिष्ठा करे। अनन्तर षोडशोपचार से वरुण का पूजन करे।

"अथ वर्द्धिनी कलशानां उत्थापनम्"

"ॐ उत्तिष्ठब्रह्मणस्पते०" इस मन्त्र से पूजित नौ कलशों को उठाकर नौ सुवासिनियों के मस्तक के ऊपर धारण करावे। इसके बाद यजमान "ॐ आनोभद्राः०" इस भद्रसूक्त का अथवा ॐ ऋचं व्वाचाम्' इस शान्ताध्याय को पढ़ते हुए तथा भगवन्नाम का उच्चारण करते हुए मण्डप की ओर प्रस्थान करे।

"अथ अर्धमार्गे क्षेत्रपालबलिः"

यज्ञमण्डप प्रस्थान करते ए आधे मार्ग में स्थित होकर क्षेत्रपाल को बलि दे। पश्चात् हाथों और पैरों को धोकर यज्ञ मण्डप की प्रदक्षिणा कर, यज्ञमण्डप के पश्चिम द्वार का पूजन करके, उसी द्वार से मण्डप में प्रवेश करके, जलाशय से लाये हुए नौ (९) कलशों को मण्डप के मध्यवेदी के पश्चिम दिशा में बनाए हुए वारुणमण्डल के ऊपर स्थापित करें। इति नववर्धिनी कलशस्थापन विधिः।

अथ वर्द्धिनी कलशस्थापन विधिः

यजमानः देशकालौ संकीर्त्य हस्ते जलाक्षत-पुष्प-द्रव्यं गृहीत्वा तिथ्यादि स्मृत्वा गोत्रः, शर्माऽहम्, (वर्माऽहम्, गुप्तोऽहम्,) श्रुति-स्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य सर्वं-विधकल्याणार्थं रुद्र, विष्वादि (यागाङ्गतया) यज्ञमण्डप प्रवेश कर्तुं वर्द्धिनी कलश देवता स्थापनं पूजनं च करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प करके काष्ठ के पीढ़े पर रक्तचावल से अष्टदल पद्म बनाकर कलशस्थापन विधि से अष्टदल पर वर्द्धिनी कलश की स्थापना करे। पश्चात् यजमान अक्षत लेकर कलश पर क्रमशः छोड़ता रहे।

ॐ भूर्भुवः स्वः वर्द्धिन्यै नमः वर्द्धिनीं आवाहयामि स्थापयामि ॥१॥
ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणं आवाहयामि स्थापयामि ॥२॥
ॐ भूर्भुवः स्वः रुद्राय नमः रुद्रं आवाहयामि स्थापयामि ॥३॥
ॐ भू० विष्णवे नमः विष्णुं आवाहयामि स्थापयामि ॥४॥
ॐ भू० मातृभ्यो नमः मातृ आवाहयामि स्थापयामि ॥५॥
ॐ भू० सागरेभ्योनमः सागरान् आवाहयामि स्थापयामि ॥६॥
ॐ भू० मह्यै नमः महीमावाहयामि स्थापयामि ॥७॥
ॐ भू० गङ्गादिनदीभ्यो नमः गङ्गादिनदीः आवाहयामि स्थापयामि ॥८॥
ॐ पुष्करादितीर्थेभ्यो नमः पुष्करादितीर्थान् आवहयामि स्थापयामि ॥९॥
ॐ भू० गायत्र्यै नमः गायत्रीमावाहयामि स्थापयामि ॥१०॥
ॐ भू० ऋग्वेदाय नमः ऋग्वेदमावाहयामि स्थापयामि ॥११॥
ॐ भू० यजुर्वेदाय नमः यजुर्वेदमावाहयामि स्थापयामि ॥१२॥
ॐ भू० सामवेदाय नमः सामवेदमावाहयामि स्थापयामि ॥१३॥
ॐ भू० अथर्ववेदाय नमः अथर्ववेदमावाहयामि स्थापयामि ॥१४॥
ॐ भू० अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि ॥१५॥

ॐ भू० आदित्येभ्यो नमः आदित्यानावाहयामि स्थापयामि ॥१६॥
ॐ भू० एकादशरुद्रेभ्यो नमः, एकादशरुद्रानावाहयामि स्थापयामि ॥१७॥
ॐ भू० मरुद्भ्यो नमः मरुतः आवाहयामि स्थापयामि ॥१८॥
ॐ भू० गन्धर्वाय नमः गन्धर्वमावाहयामि स्थापयामि ॥१९॥
ॐ भू० ऋषये नमः ऋषिमावाहयामि स्थापयामि ॥२०॥
ॐ भू० वरुणायनमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि ॥२१॥
ॐ भू० वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि ॥२२॥
ॐ भू० धनदायनमः धनद मावाहयामि स्थापयामि ॥२३॥
ॐ भू० यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि ॥२४॥
ॐ भू० धर्माय नमः धर्ममावाहयामि स्थापयामि ॥२५॥
ॐ भू० शिवाय नमः शिवमावाहयामि स्थापयामि ॥२६॥
ॐ भू० यज्ञाय नमः यज्ञमावाहयामि स्थापयामि ॥२७॥
ॐ भू० विश्वेभ्यो देवेभ्यो देवेभ्यो नमः विश्वान् देवानामावाहयामि स्थापयामि ॥२८॥
ॐ भू० स्कन्दाय नमः स्कन्दमावहयामि स्थापयामि ॥२९॥
ॐ भू० गणेशाय नमः गणेशमावाहयामि स्थापयामि ॥३०॥
ॐ भू० यक्षाय नमः यक्षमावाहयामि स्थापयामि ॥३१॥
ॐ भू० अरुन्धत्ये नमः अरुन्धतीमावाहयमामि स्थापयामि ॥३२॥

इत्यावाह्य 'ॐ मनो जूतिः' इति मन्त्रेण प्रतिष्ठापनम्। पश्चात् 'ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणवर्द्धिन्याद्यावाहित देवताः सुप्रतिष्ठिता भवत' इत्युक्त्वा 'ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणवर्द्धिन्याद्यावाहित कलश देवताभ्यो नमः इति षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा सम्पूज्य प्रार्थयेत।

वर्द्धिनी त्वं महाभागा सर्व तीर्थोदकान्विता।
अतस्त्वं प्रार्थये देवि भव त्वं कुलवर्धिनी॥

अनन्तर हाथ में जल-अक्षत पुष्प लेकर 'अनया पूजया, वरुण वर्द्धिन्याद्यावाहित कलश देवताः प्रीयन्ताम' ऐसा कहे।

इति वर्द्धिनी कलशस्थापन विधिः।